॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षणश्रेणी की पाठ्यपुस्तक : 6

प्रस्तुति - डिवाइन टच हाइक मैसेंजर ग्रुप

शास्त्रीजी महाराज

लेखक

किशोर एम. दवे

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद – 380 004.

SHASTRIJI MAHARAJ (Hindi Edition)
(Childhood stories of Bhagwan Swaminarayan)

By kishore M. Dave

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

4th Edition:

January 2007. Copies: 10,000 (Total Copies: 23,000)

ISBN: 81-7526-017-3

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

चतुर्थ संस्करण : जनवरी, 2007

प्रति : 10,000 (कुल प्रति : 23,000)

मूल्य : रु. 20.00

मुद्रक एवं प्रकाशक :

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक
जय श्री स्वामिनारायण।
शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण अपने अनादि अक्षरधाम गुणातीतानंद स्वामी के साथ इस ब्रह्माण्ड में पधारे। परंतु बहुत ही कम मुमुक्षु उनके स्वरूपों की यथार्थ महिमा समझ सके। उनके दिव्य जीवन एवं कार्य से स्पष्ट हो रहा था कि, माया से परे विद्यमान दो तत्त्व – ब्रह्म तथा परब्रह्म – इस पृथ्वी पर जीवप्राणी मात्र के आत्यंतिक कल्याण के लिए पधारे हैं।

उनके स्वरूपों की यथार्थ पहचान कराने के लिए गुणातीतानंद स्वामी के शिष्य भगतजी महाराज ने कठोर पुरुषार्थ का प्रारंभ किया। उनकी भारी अवहेलना हुई। अनेक प्रकार के अपमान को सहन करते हुए भी उन्होंने अपना सिद्धांत प्रवर्तन का कार्य जारी रखा। उन्हीं के कृपापात्र शिष्यरत्न ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज) ने गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान को बड़े साहस के साथ अत्यंत कठिनाईयों को सहन करके मूर्तिमान स्वरूप दिया। अक्षर तथा पुरुषोत्तम के अनादि स्वरूपों की मूर्तियाँ भव्य मन्दिरों का निर्माण करके प्रस्थापित की ।

इस प्रकार अक्षर तथा पुरुषोत्तम के प्राकट्य का उद्देश्य यदि किसीने विश्वप्रसिद्ध किया हो तो वे थे युगविभूति शास्त्रीजी महाराज। उन्होंने शुद्ध उपासना का रहस्य समझाया, लाखों मुमुक्षुओं के लिए आत्यन्तिक मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। उनके दिव्य जीवन से मुमुक्षुओं के हृदय में भक्ति एवं निष्ठा की दृढ़ता होती है तथा अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत के प्रति गौरव बढता हैं। इस पुस्तिका के माध्यम से हम न केवल शास्त्रीजी महाराज के जीवन प्रसंगों की जानकारी प्राप्त करेंगे परंतु सम्प्रदाय का सच्चा इतिहास भी प्रस्तुत करेंगे।

सत्संग शिक्षण परीक्षा 'सत्संग प्रवेश' के अभ्यासक्रम के रूप के लिए यह पुस्तिका आप के हाथों में प्रस्तुत है।

सभी सत्संगी बालक तथा युवक इस अभ्यासक्रम में भाग लें और सत्संग परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर भगवान स्वामिनारायण तथा प्रमुखस्वामी महाराज की प्रसन्नता प्राप्त करें, यही प्रार्थना।

– सम्पादक मण्डल

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥



हम सभी स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए।
हम सभी श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए॥

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह।
हमें है भय नहीं किसीसे, जन्मे हैं मृत्यु के लिए॥

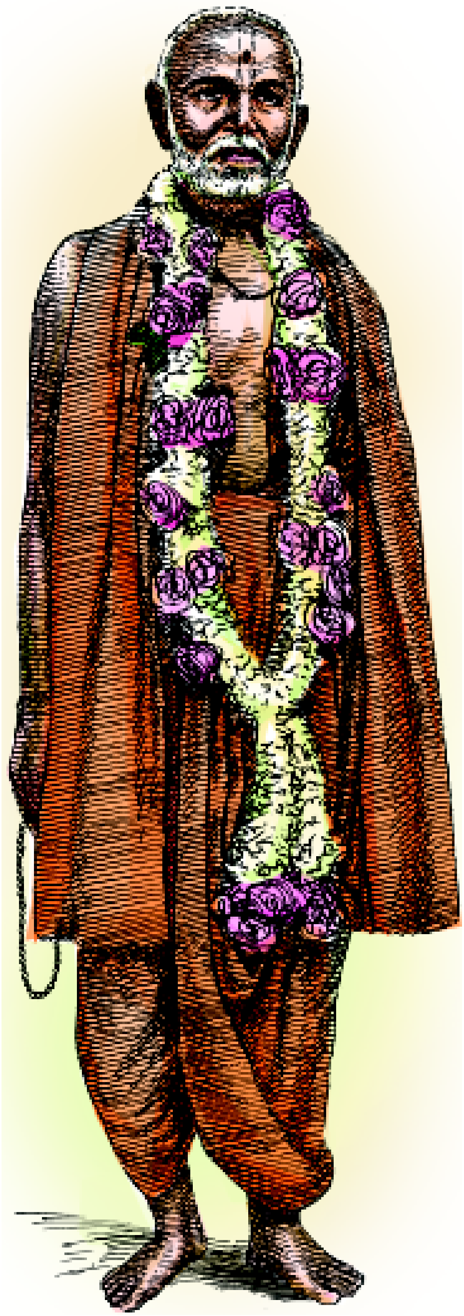
हमने है यज्ञ आरंभा, सदा बलिदान हम देंगे।
हमारा अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान के लिए॥

हम सभी श्रीजी की संतान, अक्षर में वास हमारा है।
स्वधर्मी भभूत रमाई है, अब हमें शर्म किसके लिए॥

मिले हैं मोती-से स्वामी, हुए हम पूर्णकाम सभी।
प्रगट पुरुषोत्तम पाये, संत से मुक्ति के लिए॥

क्रमिका

शास्त्रीजी महाराज



1. पूर्वभूमिका

भगवान स्वामिनारायण ने अपने प्राकट्य के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि पृथ्वी पर शुद्ध उपासना का प्रवर्तन करना तथा एकान्तिक धर्म की स्थापना करना ही मेरे प्राकट्य का लक्ष्य है। यहाँ शुद्ध उपासना का अर्थ होता है, अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम नारायण की भक्ति करना। अक्षररूप होने के लिए अक्षरब्रह्म की आवश्यकता होती है। श्रीहरि अपने साथ अक्षरधाम से गुणातीतानन्द स्वामी को साथ लेकर इस पृथ्वी पर पधारे थे। उनके साथ एकरूप होकर गुणातीत स्थिति प्राप्त करना, मनन द्वारा उनकी संगति करना ही ब्रह्मरूप होने का एक मात्र उपाय है। ब्रह्मरूप होने के बाद ही मुक्त स्थित प्राप्त करके हम पुरुषोत्तमनारायण श्री सहजानन्द स्वामी की उपासना करने के अधिकारी बनते हैं। तभी से संप्रदाय में इस बात की जानकारी होने लगी कि जिस प्रकार से सहजानंद स्वामी पुरुषोत्तमनारायण हैं, वैसे ही गुणातातीतानंद स्वामी अक्षरब्रह्म हैं।

इन दोनों की यथार्थ महिमा समझना वास्तव में कठिन ही है, क्योंकि वे माया से परे होते हुए भी मनुष्य के समान आचरण किया करते हैं। इसीलिए श्रीहरि के संतों-परमहंसों ने उनके चरित्रों तथा कार्यो में दिव्यभाव देखने की दृष्टि दी तथा गुणातीतानन्द स्वामी ने अपने उपदेशों के माध्यम से 'सहजानंद स्वामी स्वयं सर्वोपरि भगवान हैं' इस सत्य को लोकहृदय में प्रस्थापित किया। गुणातीतानंद स्वामी की साधुता, ब्राह्मी स्थिति एवं पतिव्रता के समान दृढ निष्ठा से प्रवाहित होनेवाली उनकी वाणी अत्यंत हृदय भेदक थी। उनके द्वारा संप्रदाय में यथार्थ रूप में प्रचार होने लगा कि 'श्रीजीमहाराज सर्वोपरि भगवान हैं।'

उनके परम शिष्य प्रागजी भक्त तथा जागा भक्त ने अपने गुरु अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के स्वरूप की यथार्थ महिमा का प्रसार आरंभ किया। इस प्रकार सन् 1830 के बाद 1890 तक साठ वर्षों में धीरे धीरे अक्षर और पुरुषोत्तम के स्वरूपों की बात प्रकाश में आने लगी। अन्य देवी देवताओं के समान अक्षर एवं पुरुषोत्तम की मूर्तियों को मध्य मन्दिर में प्रतिष्ठित करने का साहस किसी में नहीं था। क्योंकि सम्प्रदाय की परंपरागत जड़ रूढ़ियों को माननेवाला एक वर्ग था, जो श्रीहरि प्रबोधित वैदिक

सिद्धान्त का ही बड़े जोरशोर से विरोध कर रहा था। ऐसे तगड़े विरोध का सामना करने का साहस किसी में नहीं था।

अक्षरपुरुषोत्तम उपासना सिद्धान्त को हृदयपूर्वक स्वीकार करनेवाले बड़े-बड़े ज्ञानियों एवं सद्‌गुरुओं के हृदय में भी संशय उठते रहते कि यह पवित्र एवं न्यायसंगत सिद्धांत कब मूर्तिमान रूप धारण करेगा? श्रीजीमहाराज और गुणातीत स्वामी की मूर्तियों की प्रतिष्ठा मन्दिरों के मध्य शिखर में होगी या नहीं? जो भी अक्षरपुरुषोत्तम की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते थे, उनको विरोधियों द्वारा निष्फल कर दिया जाता था। वे असहाय स्थिति में भगवान स्वामिनारायण के चरणों में प्रार्थना करते थे कि इस महान कार्य को संपन्न करने के लिए आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति और ऐश्वर्य के साथ एक विशेष विभूति को इस धरातल पर भेजने की कृपा करें, ताकि आप के ज्ञान को विश्वफलक पर फैलाया जा सके।

वास्तव में हर किसी को ऐसे महापुरुष की ही प्रतीक्षा थी।

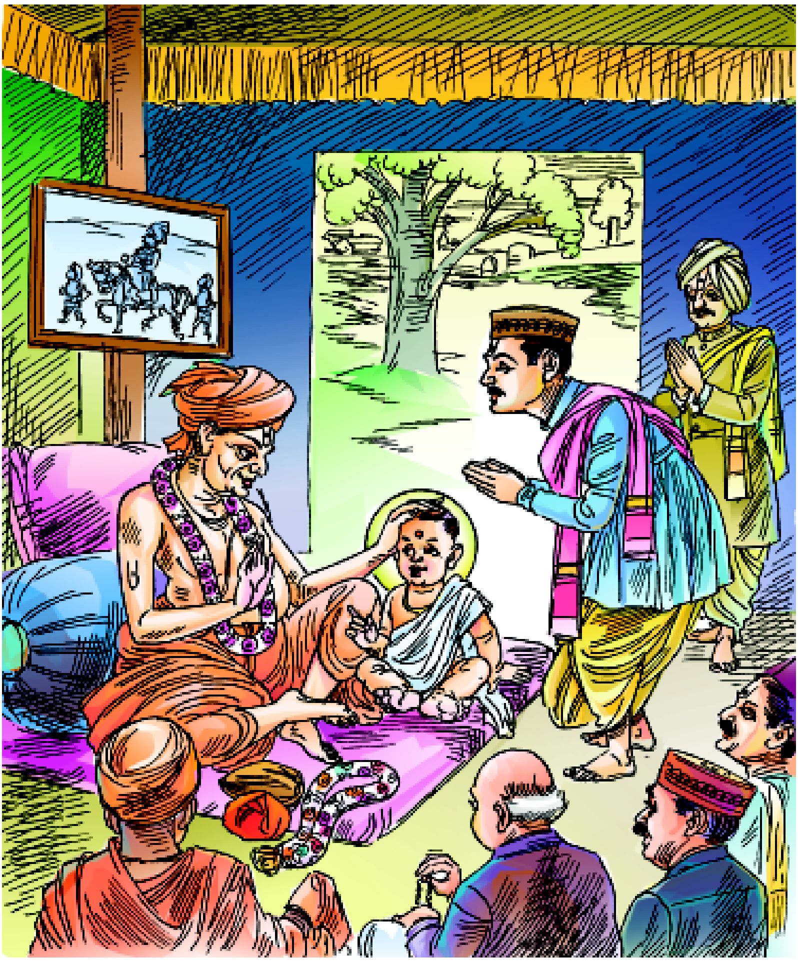
2. प्राकट्‌य और आशीर्वाद

अंततः वह शुभ दिन आ गया। गुजरात की रमणीय एवं पावन भूमि में चारुतर (चरोतर) प्रदेश विद्यमान है। वहाँ भगवान स्वामिनारायण द्वारा प्रसादीभूत 'महेलाव' गाँव में सं. 1921, माघ शुक्ल वसन्तपंचमी, दि. 31-1-1865 को ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज का प्राकट्य हुआ। उनके पिताजी का नाम था 'धोरीभाई', और माताजी का नाम था 'हेतबाई'। मथुरभाई, लालभाई के बाद तीसरे क्रम पर डुंगरभाई का जन्म हुआ था, जो कि बाद में 'शास्त्रीजी महाराज' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके बाद सोनबाई तथा रळियातबाई उनकी दों बहनें थीं। पूरा परिवार श्रीजीमहाराज के समय से संप्रदाय के साथ भक्तिभाव पूर्वक जुड़ा हुआ था। धोरीभाई के पितामह-दादा अजुभाई झवेरीदास ने तो भगवान स्वामिनारायण का प्रत्यक्ष दर्शन भी किया था।

बचपन से ही सुन्दर और सौम्य बालक डुंगर में कोई अजीब आकर्षण था। इसीलिए वे सबको प्रिय लगते थे, वे केवल छः महीने के थे कि महेलाव गाँव में भगवान स्वामिनारायण के समकालीन संत सदगुरु स्वामी शुकानन्दजी तथा वैकुण्ठानंद ब्रह्मचारी पधारे थे। धोरीभाई का बड़ा पुत्र

मथुरभाई अपने छोटे भाई डुंगर को लेकर उनके दर्शन के लिए आए। शुकानंद स्वामी ने इस तेजस्वी शिशु को गोद में लेकर वर्तमान दीक्षा दी तथा कंठी पहनाकर शुभ आशीर्वाद दिए। डुंगर भक्त एकाग्र दृष्टि से स्वामीजी को देख रहे थे, मानो उनसे कोई पुराना नाता हो।

स्वामी ने शिशु के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा कि 'यह तो पूर्व जन्म का बड़ा संस्कारी भक्त है, आगे चलकर संसार छोड़कर यह त्यागी बनेगा और आपके कुल का उद्धार करेगा।' मथुरभाई ने घर जाकर परिवारजनो को यह बताई। यह सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।



जूनागढ़ के स्वामिनारायण मंदिर के महंत, अक्षरब्रह्म श्री गुणातीतानन्द स्वामी प्रतिवर्ष चैत्री पूर्णिमा के उत्सव के लिए वड़ताल आते थे। संवत् 1867 में वे उत्सव के बाद वापस जूनागढ़ लौट रहे थे, बीच में वे महेलाव पधारे। मथुरभाई तुरंत डुंगर भक्त को लेकर स्वामीजी के पास आ पहुँचे और निवेदन किया कि स्वामीजी मेरे भाई को वर्तमान दीक्षा देने की कृपा करें।

तब स्वामीजी पूछने लगे कि 'क्या अब तक इसे वर्तमान निवेदित नहीं किया है?' मथुरभाई ने कहा कि वैसे तो पिछले साल स्वामी शुकानंदजी ने इसे वर्तमान दीक्षा देकर आशीर्वाद दिया है।

यह सुनकर स्वामीजी कहने लगे, 'अहो! शुकस्वामी तो श्रीजीमहाराज के दाहिने हाथ हैं, उन्होंने यदि वर्तमान निवेदित किया है, तो मानो स्वयं श्रीजीमहाराज ने ही निवेदित किया है।'

इतना कहकर डुंगर भक्त के सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, 'यह तुम्हारा भाई बड़ा होकर त्यागी बनेगा और स्वामिनारायण भगवान की सर्वोपरि निष्ठा का प्रसार करेगा। कथावार्ता के द्वारा सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ाएगा।'

इतना कहते स्वामीश्री की दृष्टि इस तेजस्वी शिशु के मुखारविंद पर स्थिर हो गई। उन्होंने बालक को बतासे की प्रसादी देकर फिर एक बार आशीर्वाद दिया।

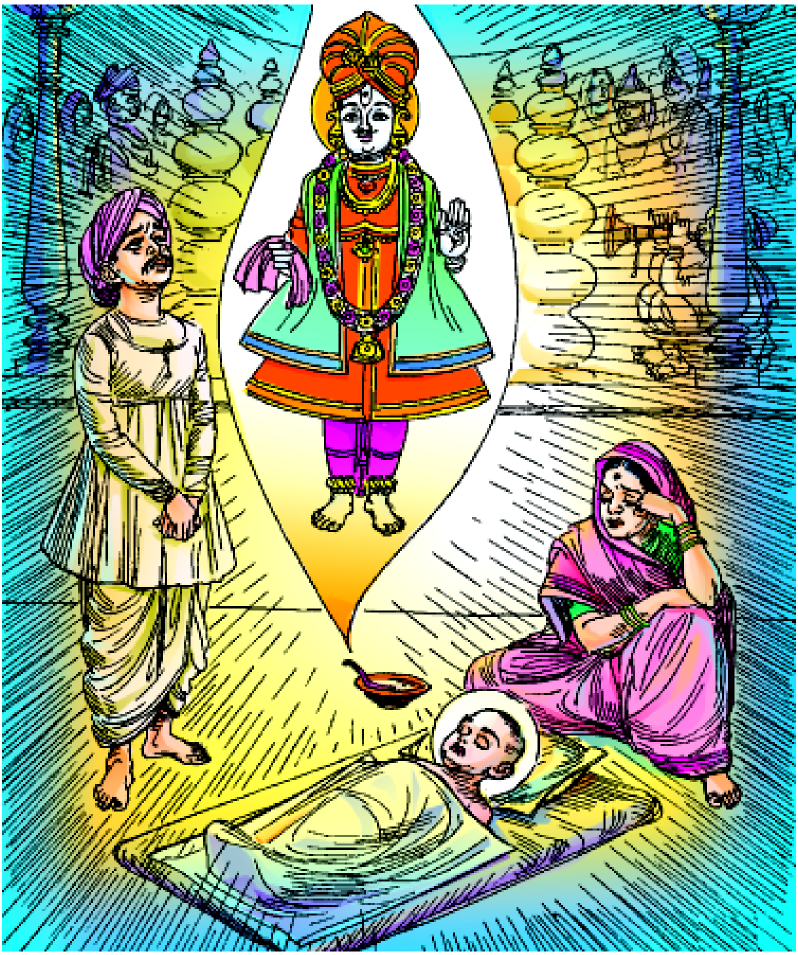
3. चमत्कार की परंपरा

बचपन से ही डुंगर भक्त के व्यवहार में भक्ति के साथ-साथ दिव्यता छलक रही थी। यह देखते ही मालूम हो जाता था कि दोनों सदगुरुओं ने इस शिशु के विषय में जो भविष्यवाणी की है, वह अक्षरशः सत्य होकर रहेगी; क्योंकि घटना ही कुछ ऐसी घटी थी। एक बार डुंगर भक्त की दोनों बहनों का विवाह प्रसंग मनाया जा रहा था। उस समय डुंगर भाई इतने बीमार हो गए कि लगता था, वे इस असाध्य बीमारी से कभी उठ नहीं पाएँगे। डुंगरभाई तो नाडी-प्राण समेटकर समाधि अवस्था में लीन हो गए, मानो वे भगवान स्वामिनारायण की मूर्ति का दर्शन कर रहे हों।

माता-पिता आघात से दुःखी हो रहे थे कि पुत्र को यह क्या हो गया! विवाह के मंगल अवसर पर सभी रस्म बिना किसी शोक के पूरी करना भी

अनिवार्य था। उन्होंने बालभक्त के शरीर को धूलाभाई के घर के एक एकांत कमरे में रख दिया और उस पर कपड़ा डालकर चिंतित मन से विवाह के रस्म निपटाने चले गए। जैसे ही बारात ने घर का आंगन छोड़ा, वे धूलाभाई के घर जा पहुँचे। देखा तो आश्चर्यचकित रह गए। क्योंकि डुंगर भक्त प्रकाश के तेजस्वी वर्तुल में हँसते-खेलते दिख रहे थे। माता-पिता यह देखकर आनंद विभोर हो गए।

कुछ सालों के बाद डुंगर भक्त की माता परलोक सिधार गईं। अब वे पिताजी के स्नेह में पलने लगे।



वास्तव में डुंगर भक्त अन्य बच्चों से बिल्कुल अलग दिखाई देते थे। जब बच्चे भाँति-भाँति के देहाती खेल खेलते, उस समय वे मिट्टी के मन्दिर बनाकर उस में मिट्टी की प्रतिमा प्रस्थापित करके वहाँ पूजन, नैवेद्य, आरती और अन्नकूट रचा करते थे। उनके खेल में भी भक्ति झलक रही थी। बिना पहचान के भी उनको देखकर लोग समझ जाते कि यह बालक अद्वितीय है और भविष्य में यह कोई महान संत विभूति होगा।

छहः साल के डुंगर भक्त, एक बार पारिवारिक विवाह प्रसंग में 'करमसद' गए थे। जब सभी लोग आनंद मना रहे थे, तब वे गाँव के ही एक मंदिर में जाकर वे देवपूजन और कथावार्ता में लीन हो गए। भोजन के समय उनकी खोज हुई, तो वे मन्दिर में बैठकर भजन कर रहे थे। परिवारजनों ने आकर खाने के लिए कहा तो उन्होंने विनम्रभाव से परन्तु दृढ़तापूर्वक मना करते हुए कहा, 'आज एकादशी का व्रत है। मैं भोजन नहीं कर सकता। छः वर्ष के इस बालक का मन अच्छे-अच्छे पकवानों के प्रति भी आकृष्ट नहीं हुआ, यह देखकर सभी विस्मित हो गए।

इस अवसर पर उनसे, बारात के लगभग सभी व्यक्तियों ने मिलकर आग्रह किया कि किसी तरह से वे खाना खा लें, परन्तु वे किसी के भी आग्रह से विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा, 'मैंने कथाओं में सुना है कि एकादशी के दिन अन्न खाना, मांस खाने के बराबर है, अब बताइए मैं कैसे भोजन करूँ?'

उनकी दृढ़ता के आगे सभी ने सिर झुका लिया। अंततः निकट के शहर आणंद से पेडा, बरफी तथा फल आदि मँगवाकर उनको भोजन करवाया गेया। बालभक्त की नियम-दृढ़ता का यह समाचार सारे गाँव में फैल गया। कुछ लोग तो यह सुनकर उनके दर्शन के लिए आने लगे।

तप, व्रत के उपरान्त वे कथावार्ता के श्रवण में भी उतनी ही अभिरुचि रखते थे। प्रतिदिन पिताजी के पास बैठकर वे रामायण, महाभारत और भागवत की कथा सुनते रहते थे।

स्वामिनारायण संप्रदाय के महान ग्रंथ वचनामृत, भक्तचिन्तामणि और निष्कुलानन्द काव्य के प्रति भी उनकी अंत्यन्त गहरी रुचि थी। रात को नियम-चेष्टा का गान करके ही वे विश्राम करते। ऐसी थी उनकी भक्तिमय दिनचर्या!

4. निर्भयता

बालभक्त डुंगर बचपन से ही निडर थे। एक रात्रि की बात है। डुंगरभक्त घर में सो रहे थे और पिताजी, उनको सोते हुए छोड़कर खेत में चले गए। अचानक डुंगरभक्त की आँखें खुलीं, तो देखा कि पिताजी नहीं थे। आकाश की ओर देखकर वे समझ गए कि यह आधी रात हो चुकी थी। उन्होंने सोचा कि पिताजी खेत में ही गए होंगे, मैं भी वहीं चलूँ।

उसी समय वे उठे और हाथ में लाठी लेकर खेत की ओर चल दिए।



रास्ते में वे मन ही मन 'स्वामिनारायण' महामंत्र का जाप करते हुए, जब खेत में पहुँचे, तो पिताजी ने आश्चर्य से पूछा, 'बेटा, आधी रात को इतने अंधेरे में तुम अकेले यहाँ कैसे आए? क्या तुम्हें डर नहीं लगा? तुम्हें मालूम है कि रास्ते में एक ऐसी जगह भी आती है, जहाँ लोग भूतों के रहने की बातें करते हैं!'

डुंगरभक्त ने तुरन्त कहा, 'पिताजी, इसमें डर कैसा? एकबार आप ही ने तो कहा था कि जो 'स्वामिनारायण' महामंत्र का नाम लेता है, उसके साथ स्वयं श्रीजीमहाराज चलते हैं और वे उसकी रक्षा करते हैं। मैं भी आज महाराज को साथ लेकर आया हूँ, अकेला नहीं आया। रास्ते में कहीं भूत मिल जाता तो इस लाठी से मारकर दूर भगा देता।' डुंगर भक्त की इस सरल एवं निर्दोष वाणी में श्रीहरि के प्रति दृढ विश्वास देखकर पिताजी बहुत प्रसन्न हुए।

डुंगर भक्त का मन कथावार्ता के बिना हमेशा बेचैन रहता।

कभी-कभी पिताजी उनको कहते कि तुम तम्बाकू की पुडियाँ बाँधने के लिए बैठ जाओ। तब डुंगरभक्त उनके साथ शर्त रखते कि 'यदि आप मुझे पुडियाँ बाँधते समय भगवान की कथा सुनाएँगें, तभी मैं पुडियाँ बाँधने



के लिए बैठूँगा।' धोरीभाई भी अपने पुत्र को हमेशा रामायण, भागवत की कथाएँ सुनाते रहते।

सात साल की उम्र से ही उन्होंने प्रत्येक पूर्णिमा पर वड़ताल जाने का नियम ले लिया था। वड़ताल के मंदिर में पहुँचकर वे सबसे पहले बड़े भक्तिभाव से ठाकुरजी का दर्शन करते तत्पश्चात् उपस्थित संतों के आसनों पर जाकर उनको दंडवत् प्रणाम करते तथा विद्वान संतों के पास बैठकर उनकी बातें सुनते। इस प्रकार वे ज्ञान और वैराग्य में अधिक से अधिक सुदृढ़ होने लगे।

मंदिर में व्यर्थ समझकर फेंके गए शास्त्रीय ग्रन्थों के पन्ने बटोरना उनको बहुत अच्छा लगता, क्योंकि ऐसे पन्ने इकट्ठे करके वे पंडित की भाँति मन्दिर के ओटे पर बैठकर पढ़ने का अभिनय करते। उस समय तो वे पाठशाला में भर्ती भी नहीं हुए थे। लेकिन उनकी इस चेष्टा से यह संकेत अवश्य मिलता था कि भविष्य में ये बेजोड़ विद्वान होंगे।

5. विद्यारम्भ

सं. 1930 (सन् 1874) में गाँव की छोटी सी पाठशाला में गंगाराम मेहताजी के पास डुंगर भक्त की पढ़ाई प्रारंभ हुई। उनकी स्मरणशक्ति



अत्यंत तेज थी। वे प्रत्येक पाठ आसानी से कण्ठस्थ कर लेते थे। इसीलिए मेहताजी भी उन पर अत्यधिक प्रसन्न रहते थे। डुंगर भक्त ने पाठशाला में प्रवेश लेते ही निश्चय कर लिया कि जब पढ़ाई ही करनी है, तो कक्षा में अव्वल ही रहना चाहिए और साधु होना है, तो साधुता में भी अव्वल ही रहना है। वे पूरी लगन से पढ़ाई करने लगे।

साथ-साथ गाँव के मन्दिर में आनेवाले सन्तों से सांप्रदायिक ग्रन्थों के साथ-साथ श्रीमद् भागवत का अध्ययन भी करने लगे। मन्दिर में जब कोई



साधु उपस्थित नहीं होते, तो लोग इस नौ वर्ष के बालक को कथा करने का आग्रह करते और डुंगरभक्त भी उनको बड़ी सुंदर शैली में कथा सुनाने लगते। ऐसे अनेक सद्‌गुणों को देखकर महेलाव गाँव के लोग डुंगरभक्त को बहुत ही प्यार दुलार से बुलाते।

महेलाव में रावजीभाई नाम के सज्जन निःसन्तान थे। वे प्रतिदिन डुंगरभक्त को पाठशाला जाते समय देखते और मन ही मन सोचते, 'यदि मेरा भी ऐसा पुत्र हो, तो मेरी संपत्ति की शोभा बढ़ जाती।' एक दिन उन्होंने डुंगर भक्त से पूछा, 'बेटा डुंगर! तू मेरे घर रहेगा? मैं तुझे पेटलाद की



अंग्रेजी पाठशाला में पढ़ाकर ऐसा विद्वान बनाऊँगा कि भविष्य में तूं अंग्रेजी राज्य का बड़ा अफसर बन जाए।'

डुंगर भक्त ने यह सुनकर हँसते हुए कहा, 'इतनी पढ़ाई के बाद भी यदि नौकरी करके परतंत्र ही रहना हो, तो ऐसी पढ़ाई मुझे हरगिज पसंद नहीं है। मैं तो साधु बनकर विद्वान बनूँगा और हज़ारों लोगों को ब्रह्मविद्या पढ़ाऊँगा।' डुंगर भक्त की ऐसी ध्येयनिष्ठा देखकर रावजीभाई विस्मित हो गए।

एक दिन रावजीभाई के घर में एक काँच का झुम्मर खरीद कर लाया गया। अब प्रश्न यह था की उसे कहाँ लगाना चाहिए, जिससे घर की शोभा बढ़े। इस विषय पर परिवार के बड़े-बड़े लोग आपस में बहस कर रहे थे।

उसी समय डुंगर भक्त वहाँ आ पहुँचे। लोग भिन्न-भिन्न मत के बाद भी एक निर्णय पर नहीं पहुँच रहे थे। इस मौके पर डुंगरभक्त ने तुरन्त अपना निर्णय दिया कि यदि इस झुम्मर को पहली मंजिल पर इस स्थान पर लगाया जाए, तो घर की शोभा बहुत ही बढ़ जाएगी। सभी ने तुरन्त ऐसा ही किया और घर की शोभा में चार चाँद लग गए! उसी तरह वैष्णवों की हवेली के झरोखे में खम्भे लगवाने थे। खम्भों के आकार के विषय में उन्होंने तुरन्त निर्णय दिया था कि खम्भों को यदि आप गोलाकार में तराशेंगे, तो झरोखों की शोभा बढ़ जाएगी। लोग दस वर्ष के बालक डुंगरभक्त की ऐसी अनन्य कलादृष्टि पर अश्चर्यचकित हो जाते थे।

महेलाव के मन्दिर में ठाकुरजी का सिंहासन बनाने वाले बढ़ई को उन्होंने सूचित किया था कि वड़ताल के सभामण्डप में जैसा सिंहासन है, बिल्कुल वैसा ही बनाना। लोग इस बालक की तीक्ष्ण अवलोकन शक्ति एवं कलाप्रेम का अनुमान करके विस्मित हो जाते।

उन दिनों छोटे-छोटे गाँवों में शास्त्रों की कथा कहने वाले कथाकार आते रहते। डुंगरभक्त कथाश्रवण के लिए वहाँ अवश्य उपस्थित हो जाते और यदि एक बार कथा सुन ली, तो सारी कथा उन्हें कण्ठस्थ हो जाती।

एकबार 'वसो' गाँव से एक माणभट्ट महेलाव आ पहुँचे। वे मिट्टी की बड़ी गगरी (माण) बजाकर महाभारत की कथा कहते थे। डुंगर भक्त ने उनकी कथा एक बार सुनी और उन्हे कण्ठस्थ हो गई। अचानक एक दिन कथाकार बीमार पड़ गए और अधूरी कथा छोड़कर वे चल बसे। गाँव के

लोगों ने सोचा कि कथा तो पूर्ण करनी ही चाहिए। किन्तु कथाकार किसको चुना जाए? इसके लिए उन्होंने डुंगर भक्त को चुना। बालभक्त डुंगर ने चौपाल पर आसन लगा दिया और ठीक उसी ढंग से माण बजाकर कथाकार की शैली में महाभारत की कथा संम्पूर्ण की। लोग इस बालक की असाधारण कौशल्य देखकर उस पर मुग्ध हो जाते।

अब वे गाँव में 'भगत' के नाम से पुकारे जाने लगे। उनके प्रति सभीका प्रेम बढने लगा। गाँव के मन्दिर में आनेवाले सन्त उनको सामने बैठाकर उनसे बातें करते। सन्तों की अनुपस्थिति में वे अपनी तीव्र स्मरणशक्ति के सहारे विभिन्न प्रसंग कहकर हरिभक्तों को प्रसन्न करते, जिससे किसी को सन्तों का अभाव नहीं खलता था।

6. सद्गुरु की खोज में

अब डुंगर भक्त का मन घर-संसार में नहीं लग रहा था। बार-बार उनके मन में साधु होने की ललक पैदा होती थी। अब सगे-सम्बन्धियों का नहीं, सन्तों की संगत ही उनको शांति दे रही थी। प्रत्येक पूर्णिमा पर जब वे वड़ताल जाते, पहले की तरह तुरन्त वापस नही लौटते थे। दो-तीन दिन मन्दिर में ही रुकते और सन्तों के साथ रहकर कथावार्ता तथा सेवा करके सभी को प्रसन्न करते। उनका नाता वडताल के साथ ऐसा जुड़ गया कि वे बार-बार वड़ताल जाने लगे। परिवारजनो को अब संदेह होने लगा कि यह किसी भी दिन घर छोड़कर चला जाएगा।

डुंगर भक्त वास्तव में किसी सच्चे ब्रह्मवेत्ता विद्वान गुरु की खोज में थे। गुरु के मिलते ही वे उसी तरह घर छोड़ देना चाहते थे, जैसे साँप अपनी केंचुली छोड़ देता है।

सं. 1937 (सन् 1881) में वे चैत्री पूर्णिमा के उत्सव पर वड़ताल जा पहुँचे। वहाँ उत्सव मनाने के लिए समग्र गुजरात के बड़े-बड़े संत महंत उपस्थित थे। सुरत-मन्दिर के महंत सदगुरु स्वामी विज्ञानानन्दजी भी इस उत्सव पर पधारे हुए थे। भगवान स्वामिनारायण के साथ बारह वर्ष रहकर उन्होंने श्रीहरि की अपार प्रसन्नता प्राप्त की थी। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और अनेक सद्गुणों से संपन्न विज्ञानानंदजी शास्त्रों के प्रखर विद्वान थे तथा

संगीत कला में भी पारंगत थे।

डुंगर भक्त सन्तों का परिचय प्राप्त करते हुए विज्ञानानन्द स्वामी के पास पहुँचे। उनके दर्शन एवं कथावार्ता से डुंगर भक्त के हृदय में परम शान्ति की अनुभूति हुई। उनको विश्वास हो गया कि मेरे सारे संकल्प इन महान संत की संगति से सिद्ध होंगे। उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि आज से विज्ञाननंद स्वामी ही मेरे मार्गदर्शक रहेंगे।

डुंगर भक्त की उत्कृष्ट मुमुक्षुता देखकर विज्ञानानन्द स्वामी के हृदय में ऐसे ही भाव जगे कि यह लड़का यदि साधु बने, तो वह मेरा योग्य



उत्तराधिकारी हो सकता है। उन्होंने पूछा, 'बेटा! तुम्हें साधु होना है?'

'हाँ, अवश्य होना है।' डुंगर भक्त ने पुलकित हृदय से उत्तर दिया।

गुरु-शिष्य की प्रेमगाँठ बँध गई। दोनों एक दूसरे को प्राप्त करके स्वयं को धन्य मानने लगे।

उत्सव के बाद वे स्वामीजी के साथ ही सुरत जाना चाहते थे, परन्तु पिताजी यदि रोक दें तो सारा खेल चौपट हो जाएगा, इस शंका के कारण वे पिताजी के साथ घर की ओर चल दिए। बाद में स्वामीजी जिस दिन सुरत जानेवाले थे, उसी दिन वे बिना किसी को बताये चुपचाप वड़ताल आपहुँचे। दुर्भाग्यवश स्वामीजी एक दिन के बाद सुरत जाने वाले थे। इसलिए पिताजी उनको खोजते हुए वड़ताल आपहुँचे और समझा-बुझाकर डुंगर भक्त को घर वापस ले गए।

7. मार्ग हरि का है शूरों का

अब डुंगर भक्त का हृदय घर-संसार में नहीं लगता था। वे उदास रहने लगे। उनके मुँह से बार-बार 'स्वामी, स्वामी' का उद्‌गार निकल जाता। सगे-सम्बन्धियों के साथ बातचीत में उनकी कोई रुचि नहीं रही थी। बार-बार विज्ञानानन्द स्वामी का स्मरण करके वे भगवत् स्मरण में खो जाते। इसी स्थिति में छः महीने बीत गए। उनकी हालत देखकर पिताजी भी चितिंत रहने लगे।

एक दिन अवसर पाकर डुंगर भक्त वड़ताल पहुँच गए। वहाँ से उन्होंने स्वयं ही सुरत की राह ली। पिताजी भी उनके पीछे-पीछे सुरत पहुँचे और डुंगर भक्त को साथ लेकर वड़ताल आ पहुँचे।

यहाँ आकर उन्होंने विहारीलालजी महाराज को उलाहना दिया कि आपके साधु हमारे लड़के को भगा ले जाते हैं। यह सुनकर उन्होंने डुंगर भक्त को उलहना दिया, 'क्या तुम साधु को जेल में भिजवाना चाहते हो? जब तक तुम्हारे पिता की सहमति न मिले, तुम्हे साधु बनने के लिए यहाँ कभी नहीं आना है।'

यह सुनकर डुंगर भक्त और भी उदास हो गए। परन्तु मन्दिर के कोठारी गोवर्धनभाई ने उन्हें आश्वासन देते हुए, कहा, 'इसमें उदास होने की आवश्यकता नहीं है। तुम दो-तीन के दिन के बाद दर्शन करने के लिए



यहाँ आ सकते हो।'

तीन दिन के बाद जब वे वड़ताल पहुँचे, तो विहारीलालजी महाराज ने उनको अपने पास बुलाया और पूछा, 'तुम सुरत गए थे न! कहो, स्वामी के पास से तुम क्या सीखकर आए हो?'

डुंगर भक्त ने उसी क्षण पद्मासन लगाया और माला फेरना आरम्भ किया। यह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए, और उपस्थित साधुओं को इकट्ठा कर कहने लगे कि माला फेरनी है, तो इस लड़के से सीखो!

उनकी तीक्ष्ण बुद्धि एवं सद्गुणों को देखकर विहारीलालजी महाराज के हृदय में उनको अपने पास रखने की इच्छा हुई, वे बोले, 'तुम पार्षद



बनकर मेरे पास रहो।' उन्होंने हाथ जोड़कर विनय और नम्रता से प्रत्युत्तर दियाद्व 'मुझे तो सूरत जाकर स्वामीजी की सेवा में रहना है।'

इतने में उनके पिताजी न मालूम कैसे वहाँ पहुँच गए और उनको साथ लेकर महेलाव की ओर चल पड़े।

रास्ते में वे अपने पिताजी को सम्बोधित कर वैराग्य की बातें सुनाने लगे, 'पिताजी, देह और देह से सम्बन्ध रखनेवाले सभी पदार्थ एवं व्यक्ति नाशवंत हैं।

आप ऋषभदेव भगवान का आख्यान तो जानते ही होंगे। उन्होंने अपने सौ पुत्रों को वैराग्य का उपदेश देकर साधु बना दिया था। आप मुझे क्यों रोक रहे हैं? यदि आप मुझे त्यागी होनें की सहमति देंगे तो भगवान आप पर अत्यंत प्रसन्न होंगे।' ऐसा अदभुत उपदेश सुनकर पिताजी की आँखें भर गईं। उन्होंने अपने बेटे को गोद में लेकर कहा, 'बेटा, तेरी इच्छा के अनुसार ही होगा।' आज पिताजी के अज्ञान का पर्दा दूर हो गया और वे आँखों में आँसू भरकर, पुत्र को गोद में लेकर भाव विभोर हो गए।

दूसरे ही दिन उन्होंने पुत्र को पास बैठाकर बड़े प्यारदुलार से कहा, 'तुम तो भजन करने और करवाने के लिए ही प्रकट हुए हो। मैं जानता हूँ कि तुम घर या संसार में कभी नहीं रह सकते। साधु होने के बाद हम सभी पर कृपादृष्टि रखना।' इतना कहते ही वे गद्-गद हो गए। आज उनको गुणातीतानन्द स्वामी के शब्दों का स्मरण हो रहा था कि यह त्यागी बनकर सत्संग की सेवा करेगा। उन्होंने स्वामी विज्ञानानन्दजी पर सहमति पत्र लिख दिया। धनुष से छूटे हुए तीर की भाँति डुंगर भक्त सूरत जाने के लिए निकल पड़े। वह सं. 1938 (1882) का पवित्र मार्गशीर्ष मास था।

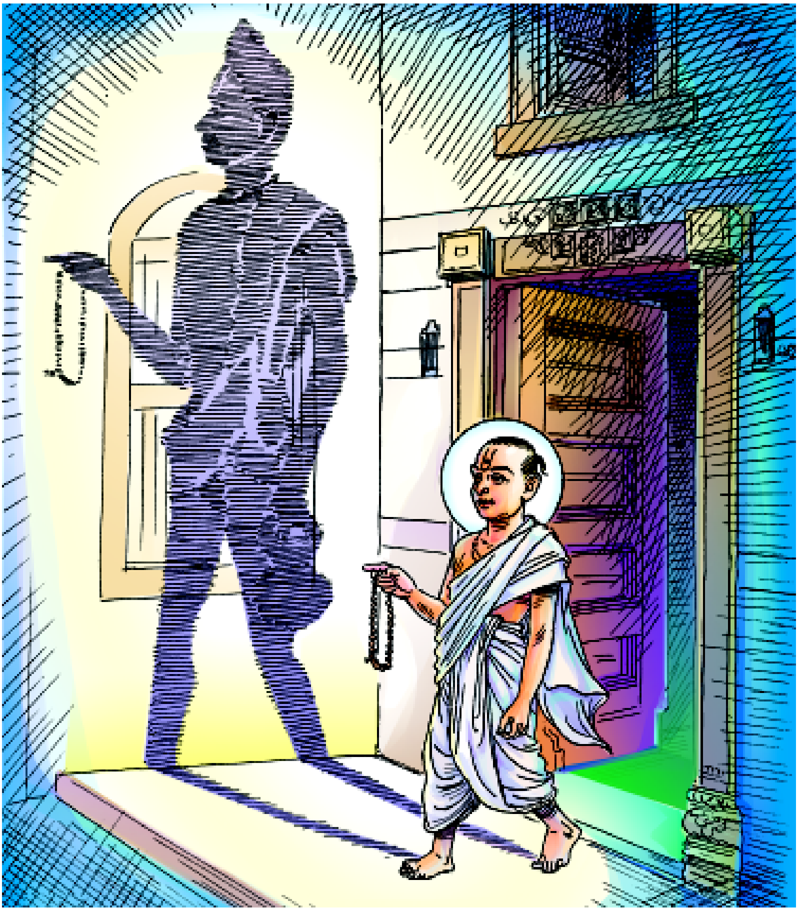
8. गृहत्याग

डुंगर भक्त विज्ञानानन्द स्वामी से मिलने के लिए इतने उत्सुक थे कि वे विठ्ठलदास सेठ के साथ बोरियावी स्टेशन पर जा पहुँचे। वहाँ से वे बड़ौदा पहुँचे, क्योंकि उन्होंने सुना था कि विहारीलालजी महाराज वहाँ आ रहे हैं, तो कदाचित् स्वामीजी भी वहाँ पधारेंगे। उनका अनुमान सच निकला। यहाँ विज्ञानानन्द स्वामी के दर्शन से डुंगर भक्त की आत्मा पुलकित हो उठी।

कोठारी गोवर्धनभाई ने डुंगरभक्त की विलक्षणताओं को देखकर कहा था, 'तुम मेरे पास रहो, तुमसे मुझे बहुत सेवायें लेनी है।' परन्तु डुंगरभक्त ने उनसे विनयपूर्वक निवेदन किया, 'कोठारी महाराज, मुझे तो विज्ञानानन्द स्वामी की सेवा के लिए ही मेरे पिताजी ने छुट्टी दी है, इसलिए मैं उन्हीं के पास रहूँगा।'

दूसरे दिन विहारीलालजी महाराज ने उनको देखा तो पूछा, 'अरे! तुम फिर से आ गए?' डुंगर भक्त सोचने लगे कि शायद ये मुझे यहाँ नहीं रहने देंगे। उन्होंने विज्ञानानन्द स्वामी को जब पूरी बात बताई, तो उन्होंने आश्वासन देते हुए कहा कि जब तुम घर से छुट्टी लेकर ही आए हो, तो वे क्यों मना करेंगे? डुंगर भक्त अब प्रसन्न मन से स्वामी की सेवा में जुड़ गए।

हर प्रकार की सेवा में जुड़े हुए डुंगर भक्त को देखकर सभी का हृदय प्रसन्न हो जाता था। उत्सव में प्रयोग किए गए बड़े-बड़े बरतनों के भीतर घुसकर, उन्हें साफ करते देखकर लोगों को हँसी आ जाती थी। साथ ही वे उनकी सेवापरायणता देखकर आश्चर्यचकित भी होते थे।



उत्सव के बाद डुंगर भक्त विहारीलालजी महाराज की आज्ञा से ब्रह्मचारी देवानन्दजी के साथ कानम प्रदेश में चन्दा इकट्ठा करने के लिए विचरण करने लगे। वहाँ भी दालान–आँगन की सफाई करना, पानी भरना और रसोई की सेवा में हाथ बँटाना उनका नित्यक्रम बन गया था। वे कथा के पूर्व कीर्तन गाते तथा मध्यरात्रि तक कथावार्ता भी सुनाते। प्रात:काल उठकर नित्यक्रम तथा पूजा–आरती के बाद तुरन्त सेवा में लग जाते। इतना करने पर भी वे हमेशा तरोताजा रहते। थकान की तो उन्हें परवाह तक नहीं थी।

एक दिन बड़ी सुबह वे ढाढर नदी पर स्नान के लिए गए। थरथराने वाली ठंड में अत्यंत ही ठंडे पानी से स्नान करने के कारण वे बेहोश हो

गए। होश में आने पर ब्रह्मचारीजी ने उनसे कहा, 'तुम इतना अधिक परिश्रम न किया करो, जाड़े के दिन हैं, तुम इतने तड़के क्यों उठते हो? जरा देर से स्नान आदि किया करो।'

परन्तु कठोर सेवा के व्रत से उन्होंने सबका हृदय जीत लिया था। डुंगर भक्त तीन महीने के बाद सूरत पहुँचे। यहाँ विज्ञानानन्द स्वामी ने उनको कोठार का काम सौंपा। यह सेवा वे बड़ी सावधानी से करते थे। आय-व्यय के हिसाब-किताब में उनकी कुशलता और सावधानी से स्वामी विज्ञानानन्द तथा स्थानीय हरिभक्त डुंगरभक्त से बहुत प्रभावित हुए। स्वामी



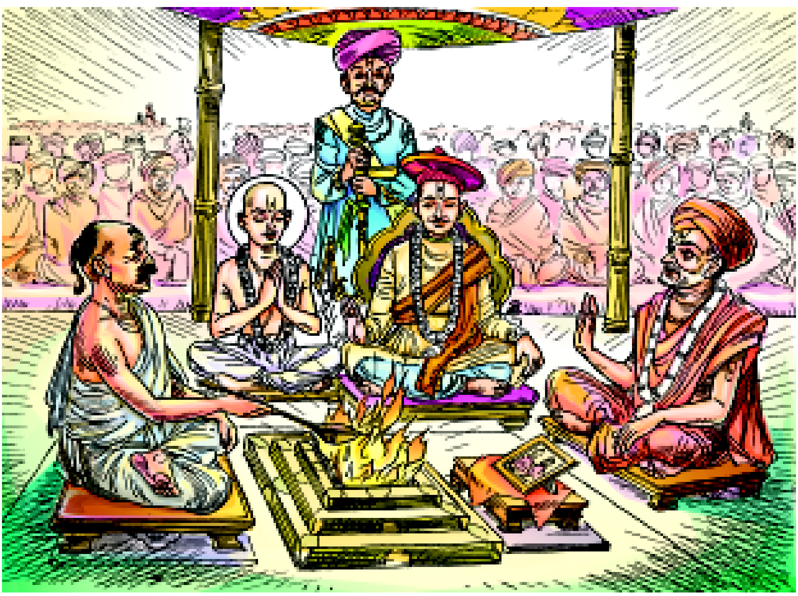
तो उनको सेवा का उत्तरदायित्व सौंपकर मानो निवृत्त ही हो गए।

इतने सेवाकार्य के बावजूद, वे स्वामीजी के पास बैठकर नियमित रूप से संस्कृत भाषा की पढ़ाई करते रहते। केवल चार महीनों में उन्होंने 'सारस्वत व्याकरण' समाप्त किया । उनकी सेवाभावना, हरिभक्तों के प्रति प्रेम और मन्दिर की देखभाल आदि से लोग उन्हें मन्दिर के कोठारी ही समझने लगे। स्वामीजी की उन पर असीम कृपा हो गई थी।

9. दीक्षामहोत्सव

डुंगर भक्त को अब भागवती दीक्षा दिलाने के लिए विज्ञानानन्द स्वामी भी अत्यंत उत्सुक थे। संवत 1939 (सन् 1883) कार्तिक शुक्ल 4 के दिन भगवान स्वामिनारायण के समकालीन संत स्वामी अद्भुतानन्दजी अक्षरनिवासी हुए। उस अवसर पर सारे गुजरात से अनेक संत मंडल वड़ताल पधारे थे। विज्ञानानन्द स्वामी भी डुंगरभक्त को साथ लेकर वड़ताल पधारे। उन्होंने विहारीलालजी महाराज से बिनती की कि डुंगर भक्त को दीक्षा देकर आशीर्वाद दें।

परन्तु उनको भी डुंगर भक्त जैसे चतुर और बुद्धिमान सेवक की



आवश्यकता थी। साधु होने के बाद तो डुंगर भक्त को खोना ही पड़ेगा, यह सोचकर उन्होंने कहा कि अभी उनको पार्षद हुए बारह महीने नहीं हुए हैं, अत: दीक्षा देने की इतनी जल्दी नहीं है। यह सुनकर स्वामीजी निराश हो गए। उन्होंने महाराजश्री को कहा, 'यदि आप ठीक से गिनती करेंगे, तो मालूम होगा कि पिछले साल अधिक मास पड़ा था, इस हिसाब से आज बारह महीने समाप्त हो चुके हैं।' परन्तु महाराज श्री ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया।

स्वामीजी ने उदास होकर गोरधनभाई कोठारी से मिले। वे भी डुंगरभक्त को अपने पास ही रखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने भी इस विषय में कुछ भी दिलचस्पी नहीं दिखाई। परन्तु वहाँ पधारे हुए कई बड़े सद्गुरु सन्तों ने जब इस बात को जाना, तब जाकर महाराज श्री से कहने लगे कि विज्ञानानन्दजी जैसे श्रीहरि के कृपापात्र सन्त को ठेस पहुँचाना उचित नहीं हैं। आप उनकी इच्छा के अनुसार डुंगर भक्त को दीक्षा दें और ऐसे संत की प्रसन्नता प्राप्त करें। अब महाराज श्री इस बात पर सहमत हुए।

सं. 1939 कार्तिक कृष्ण पंचमी के शुभदिन दीक्षा के लिए निश्चित किया गया। इस अवसर का गौरव समझकर महाराज श्री ने बड़े यज्ञ का शुभारम्भ किया। उस दिन यज्ञमण्डप में ही बड़ी धूमधाम से विहारीलालजी महाराज ने डुंगर भक्त को दीक्षा दी; एवं 'यज्ञपुरुषदास' नाम दिया।

आज महाराजश्री ने एक विद्वान ज्योतिषी को बुलाकर नवदीक्षित साधुओं के जन्माक्षर दिखाए। जब यज्ञपुरुषदासजी के जन्माक्षर देखे, तो ज्योतिषी कहने लगे कि यह तो ईश्वरावतार योगीन्द्र पुरुष हैं और आगे चलकर यह महान समर्थ सन्त बनकर संप्रदाय की महान सेवा करेगा।

10. प्रागजी भक्त की संगत

वड़ताल से स्वामी यज्ञपुरुषदासजी सूरत पधारे। यहाँ गुरु एवं मन्दिर की सेवा में जुड़ गए।

उसी वर्ष फाल्गुन मास में घनश्याम महाराज की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा होनेवाली थी। इस उत्सव में भावनगर जिले के महुवा गाँव से अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के मुख्य शिष्य प्रागजी भक्त भी पधारे थे। उनके आसन पर निरंतर कथावार्ता हो रही थी। सैकड़ों सन्त एवं हरिभक्त बैठकर उनकी

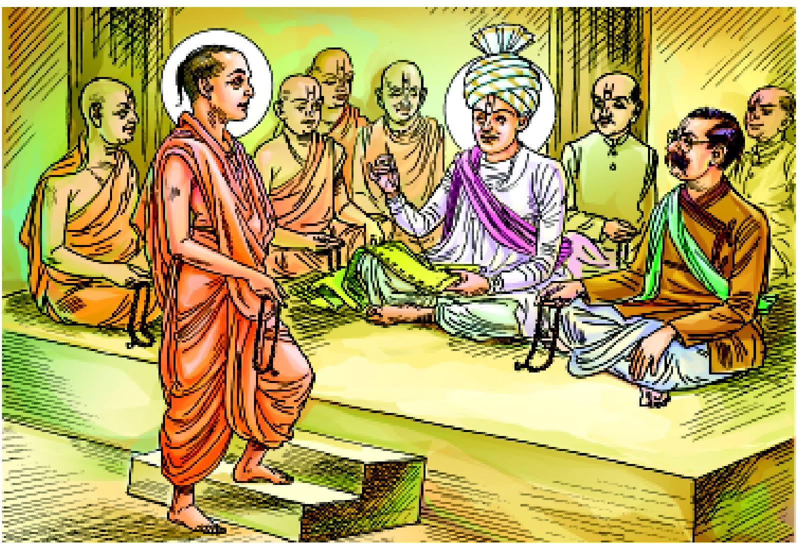
अनुभव वाणी सुना करते थे। एकबार स्वामी यज्ञपुरुषदासजी भी श्रोताओं की भीड़ देखकर प्रागजी भक्त की कथा सुनने के लिए जा पहुँचे।

प्रागजी भक्त का कथा कहने का ढंग ही निराला था। वे दर्जी कुटुंब से संबंधित थे। इसलिए वस्त्र की सिलाई करते हुए कथा करते रहते थे। सुननेवाले सभी एकाग्रचित्त हो सुन रहे थे। न कोई हलचल थी न कोई शोर। सभी के चेहरे पर आनन्द छलक रहा था।

यज्ञपुरुषदासजी यह देखकर बड़े विस्मित हुए। उन्होंने सोचा कि यह तो वाकई अद्‌भुत पुरुष हैं! बातें भी करते हैं, और श्रोताओं के सामने देखकर सिलाई का काम भी करते हैं! ये इतने काम एक साथ कैसे करते होंगे?

प्रागजी भक्त ने अंतयार्मी रूप से उनका मन पकड़कर कहा, 'सुनिए साधुराम! प्राणीमात्र की दो आँखें होती हैं, विद्वानों की तीन और धर्मपरायण व्यक्ति की सात आँखें होती हैं, किन्तु ज्ञानियों के तो असंख्य नेत्र होते हैं। वे आगे और पीछे से सर्वत्र एवं सब कुछ देख सकते हैं। मैं उंगलियों तथा पीठ से भी देखता रहता हूँ। इस प्रकार चारों ओर मेरी दृष्टि रहती है।'

यज्ञपुरुषदासजी आश्चर्यचकित रह गए। क्योंकि उनके हृदय की बात को प्रागजी भक्त बिना पूछे ही समझ गए थे। उन्होंने सोचा कि अवश्य ये कोई महापुरुष ही हैं। वे हमेशा प्रागजी भक्त की बातें सुनने हेतु आने लगे।



उनमें प्रागजी भक्त के प्रति स्नेहभाव बढ़ता गया।

कुछ ही दिनों में उनकी बातों से यज्ञपुरुषदासजी का हृदय रंग उठा। वे समझ गए कि ये गुणातीतानन्द स्वामी के कृपापात्र शिष्य हैं। उन्होंने प्रागजी भक्त को अपने मन में गुरुस्थान पर बिठा दिया।

उनका सारा दिन उत्सव की सेवा में बीत जाता। रात के समय वे प्रागजी भक्त की कथा सुनने के लिए आ जाते। बड़ी देर तक कथा सुनकर अपने आसन पर लौटते और अपने साथी साधु रामरतनदासजी को जगाकर खुद सुनी हुईं सभी बातें उनको सुनाते! इस प्रकार पूरी रात बीत जाती। प्रातः चार बज़े बातें समाप्त करके वे स्नान के लिए 'तापी' नदी की ओर निकल पड़ते।

विज्ञानदास स्वामी तथा प्रभुदास कोठारी आदि प्रागजी भक्त के शिष्य थे। समय मिलने पर यज्ञपुरुषदासजी उनके पास बैठकर अध्यात्मवाणी सुनते और ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता करके गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करने लगे।

11. ब्रह्मविद्या की राह

सुरत में एकबार कथा-प्रसंग में प्रागजी भक्त ने वचनामृत ग्रंथ पर निरूपण करना आरम्भ किया। उन्होंने स्वामी यज्ञपुरुषदासजी को वचनामृत लोया-12 पढ़ने की आज्ञा दी। प्रागजी भक्त ने वचनामृत निरूपण का निष्कर्ष यह निकाला कि हमें अक्षररूप होकर ही पुरुषोत्तम भगवान की भक्ति का अधिकार मिलता है तथा अक्षररूप होने के लिए अक्षरब्रह्म के साथ एकात्मकता रखनी चाहिए। उसी को उत्तम निर्विकल्प निश्चय कहा जाता है।

इस कथाप्रसंग में प्रागजी भक्त ने कहा कि जिस अक्षर की बात शास्त्रों में कही गई है, वही अक्षरब्रह्म स्वयं गुणातीतानन्द स्वामी हैं। बिना गुणातीत सन्त के, अक्षररूप होना और पुरुषोत्तम भगवान का निश्चय होना वास्तव में कठिन है। स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने पहली बार इस प्रकार की स्पष्ट बातें सुनी।

कुछ दिनों के बाद एक दिन सूरत के हरिभक्तों ने विज्ञानानन्द स्वामी से पूछा, 'स्वामी! वचनामृत में उत्तम निर्विकल्प निश्चय की बात लिखी गई हैं, परंतु ऐसा निश्चय किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है?' विज्ञानानन्द

स्वामी ने अपने अनुभव के आधर पर समझाने का प्रयास किया, परंतु वहाँ उपस्थित स्वामी यज्ञपुरुषदासजी संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने प्रागजीभक्त का स्मरण करके विनम्रता पूर्वक वचनामृत लोया 12 के संदर्भ में कहा कि, अक्षररूप होकर ही उत्तम निर्विकल्प निश्चय किया जा सकता है। अत: हमें ऐसा निश्चय करने के लिए अक्षरब्रह्म के साथ एकता करनी होगी।

ऐसी विलक्षण और शास्त्र सम्मत बात सुनकर स्वामी विज्ञानानन्दजी अत्यंत प्रसन्न हो गए और कहा कि प्रागजी भक्त तो वचनामृत के रहस्य और श्रीहरि के सिद्धान्त के संपूर्ण ज्ञाता हैं, उन्होंने गुणातीतानन्द स्वामी की कृपा से ब्राह्मी स्थिति प्राप्त की है। तुम उनके साथ स्नेहभाव से जुड़े हो, तो अब उनका सत्संग जीभर के कर लेना।

सूरत में भगतजी के प्रति भक्तिभाव रखनेवाले कुछ हरिभक्तों से एक बार यज्ञपुरुषदासजी ने सुना कि श्रीजीमहाराज सर्वोपरि भगवान हैं। तब उन्होंने वरिष्ठ संत विज्ञानानन्द स्वामी से पूछा कि 'वचनामृत में तो श्रीहरि स्वयं को नरनारायण के अवतार बताते हैं और ये हरिभक्त तो कुछ और ही बातें कर रहे हैं। तो आप मुझे सत्य बताने की कृपा करें।'

स्वामी ने अवसर देखकर धीरे से कहा, 'साधुराम, वे सच बताते हैं। गढ़डा में मैंने स्वयं श्रीजीमहाराज के मुख से ही यह बात सुनी थी कि वे सर्वोपरि भगवान हैं, तुम इसी सिद्धांत को सत्य समझो।' इस स्पष्टता के बाद उनको दृढ़ निश्चय हो गया कि वास्तव में भगवान स्वामिनारायण सर्वोपरि भगवान हैं और गुणातीतानन्द स्वामी मूल अक्षरब्रह्म हैं।'

स्वामी यज्ञपुरुषदास को प्रागजी भक्त के सत्संग से दिव्यआनंद की अनुभूति होती थी। वे फुर्सत पाते ही तुरन्त भगतजी के पास पहुँच जाते। यह देखकर कुछ साधु ईर्ष्या और द्वेष के कारण आपस में यज्ञपुरुषदासजी की निंदा करने लगे कि श्रीहरि के समकालीन संत स्वामी विज्ञानानन्दजी जैसे विद्वान संत के शिष्य होने पर भी, यह प्रागजी भक्त जैसे गृहस्थ की कथावार्ता सुना करता है तथा उनके पीछे-पीछे घूमता रहता है। यदि ऐसा ही रहा तो सत्संग समुदाय में साधुओं की कीमत ही नहीं रहेगी।

वे विहारीलालजी महाराज के पास जाकर शिकायत करने लगे कि या तो आप भगतजी को रखिए अथवा हमें!

महाराजश्री ने भी सोचा कि मंदिर में कोई झगड़ा हो जाए यह उचित नहीं है। इस विचार से उन्होंने भगतजी को कुछ दिन के बाद सूरत से महुवा जाने का आदेश दे दिया।

सूरत में विज्ञानानन्द स्वामी अब यज्ञपुरुषदासजी को 'धर्मामृत', 'हरिगीता', 'वासुदेव माहात्म्य' आदि ग्रंथों की शिक्षा देने लगे। कुछ महीनों के बाद उन्होंने 'भागवत' पढ़ाना आरम्भ कर दिया। परंतु अब उनका स्वास्थ्य सानुकूल नहीं रहता था। उनकी बीमारी बढ़ रही थी। स्वामी यज्ञपुरुषदासजी दिन-रात उनकी सेवा में लगे रहते। परंतु आखिर उनका अंत समय आ गया।

ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी के दिन श्रीहरि स्वयं स्वर्णरथ लेकर स्वामी को लेने के लिए पधारे।

यज्ञपुरुषदासजी ने स्वामी से कहा, 'स्वामी, श्रीहरि आपको लेने के लिए चार बजे से पधारे हैं।' यह सुनकर स्वामी स्नेहार्द्रभाव से अपने इस शिष्य की ओर कृपादृष्टि करते रहे। वैसे ही आधे घण्टे का समय बीत गया। द्वादशी के दिन प्रातःकाल स्वामी अक्षरनिवासी हो गए।

विज्ञानानंद स्वामी के देहोत्सर्ग के बाद यज्ञपुरुषदासजी तथा पूरा संत मंडल शोकातुर होकर गुरु के गुणगान गाते हुए नामधुन करने लगे।

प्रबोधिनी एकादशी के दिन यज्ञपुरुषदासजी वड़ताल पधारे। वहाँ उनके द्वारा मिली हुई श्रीहरि की प्रासादिक चीज़ें मन्दिर को अर्पण कर दीं । ऐसे समर्पणभाव से महाराजश्री अति प्रसन्न हुए।

12. यह तो मेरा दुलारा लाल

एकबार प्रागजी भक्त वड़ताल पधारे थे। यह सुनकर यज्ञपुरुषदासजी उनके सत्संग के लिए वहाँ जा पहुँचे। महाराजश्री ने भी पूर्णिमा के उत्सव के बाद उनको एक महीना अधिक रोककर उनके सत्संग से हरिभक्तों को कृतार्थ किया था। प्रागजी भक्त की कथा सुनने के लिए अनेक संत एकत्र होते थे, परंतु कुछ द्वेषी साधुओं को यह पसन्द नहीं था। वे कभी-कभी लोगों को प्रागजी भक्त के पास जाने से रोकते थे और कभी-कभी तो कथा सुन रहे साधुओं तथा हरिभक्तों को भी सभाखण्ड से बाहर भेज देते थे। यह देखकर भगतजी महाराज ने स्वयं ही सोचा कि मेरे कारण इतना उत्पात ठीक नहीं है।

इसलिए वे स्वयं अपने साथ स्नेहभाव से जुड़े संतों को कहते कि आप जाइए और अपनी सेवा में लगे रहें। मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है। एकबार जब उन्होंने संतों को उठने का आदेश दिया तो नारायणचरणदासजी ने पूछा, 'आप सभी साधुओं को अपनी कथा में से उठा देते हैं, लेकिन यज्ञपुरुषदासजी को कभी भी उठने का आदेश नहीं देते, ऐसा क्यों?'

भगतजी मुस्कराने लगे और कहा, 'वह तो मेरा दुलारा लाल है। वह तो बैठेगा ही, आप लोग उसकी स्पर्धा न करो।'

यह सुनकर सभी सोचने लगे कि वास्तव में शिष्य पर गुरु बहुत ही प्रसन्न हैं।

विज्ञानानन्द स्वामी ने यज्ञपुरुषदासजी को श्रीहरि के चरणारविंदों की कुमकुम छाप दी थी। जो सफेद वस्त्र पर अत्यंत सुशोभित और स्पष्ट लग रही थी। ऐसी ही छाप स्वामी रामरतनदासजी के पास भी थी। परंतु वह इतनी स्पष्ट नहीं थी। रामरतनदासजी हमेशा यज्ञपुरुषदासजी से कहते कि आप प्रासादिक चरणारविंदों की छाप मुझे दें। परंतु यज्ञपुरुषदासजी ऐसा करने की मना कर देते। एक दिन रामरतनदास ने कहा, 'प्रागजी महाराज, यदि आप कहेंगे तो यज्ञपुरुषदासजी मुझे श्रीहरि की प्रसादी देंगे। मैं, उनको अपने पास रखा हुआ श्रीजी का चरणारविंद, उनको दे दूँगा।' भगतजी महाराज के आदेश के अनुसार यज्ञपुरुषदासजी ने चरणारविंदों की छाप साथी संत को दे दी। परंतु उन्होंने वादे के अनुसार अपने पास रही चरणारविंदों की छाप यज्ञपुरुषदासजी को नहीं दी।

जब महाराजश्री को यह खबर मिली तो कहने लगे : 'भगतजी! आपने यह क्या किया? आपको मालूम नहीं कि जिस मंडलधारी (मुख्य संत) के पास श्रीहरि के चरणारविंद नहीं होते, उनके पास साधु नहीं रहते।'

यह सुनकर भगतजी महाराज ने कहा, 'महाराज! आप ऐसी चिंता न करें। मैं तो यज्ञपुरुषदासजी को चरणारविंद देनेवाले स्वयं श्रीजीमहाराज को ही दूँगा। फिर एक दो नहीं सैंकड़ों साधु उनके पास रहेंगे!'

यज्ञपुरुषदासजी की कुशाग्र बुद्धि एवं सम्प्रदाय के सिद्धान्त समझाने की पद्धति देखकर विहारीलालजी महाराज को लगा कि यह युवा साधु यदि शास्त्रीय शैली से संस्कृत का अध्ययन करेगा, तो सम्प्रदाय की बहुत बड़ी

सेवा करेगा। यह सोचकर उन्होंने अपना विचार भगतजी के सामने रखा।

उन्होंने कहा, 'बहुत ही अच्छा विचार है। आप उसे शास्त्रविद्या सिखाइए, मैं उसे ब्रह्मविद्या सिखाऊँगा।'

इस प्रकार 'सिद्धान्त कौमुदी' ग्रंथ से यज्ञपुरुषदासजी की संस्कृत शिक्षा का आरंभ हुआ। इन दिनों भगतजी के शिष्य एवं साधुमूर्ति विज्ञानदासजी की संगति बढ़ने के कारण यज्ञपुरुषदासजी को प्रागजी भक्त की मूर्ति एवं उनके ज्ञान में विशेष आकर्षण होने लगा। गुरु स्मरण में लीन होने के कारण पढ़ाई में उनका मन नहीं लगता था। ध्यान और भजन के प्रभाव से हर रात को भगतजी स्वप्न में दर्शन देने लगे।

इन दिनों विज्ञानदासजी सोजित्रा पधारे थे। उनकी बातें सुनने के लिए यज्ञपुरुषदासजी वड़ताल से पैदल चलकर वहाँ पहुँच जाते और सारी रात अक्षर एवं पुरुषोत्तम के तत्त्वदर्शन की बातें कहा करते। भगतजी महाराज का सन्तमण्डल अखण्ड ध्यान, भजन और कथावार्ता में लीन रहता था। वे कभी भिक्षा में मिष्ठान्न की रसोई नहीं लेते थे। दिनभर ध्यान और कथावार्ता के सिवा अन्य कोई प्रवृत्ति नहीं थी। सारे प्रदेश में इस सतमंडल की साधुता एवं निस्पृहिता की बातें होने लगी।

13. गुरुशिष्य का प्रेमप्रवाह

चैत्र शुक्ला नवमी के उत्सव में जूनागढ़ से गुणातीतानंद स्वामी के शिष्य जागाभक्त वड़ताल पधारे थे। यज्ञपुरुषदासजी ने उनके द्वारा गुणातीतानंद स्वामी की अति अपार महिमा सुनी। उनकी सेवा करके बहुत प्रसन्न किया।

भगतजी महाराज उन दिनों गुजरात में पधारे थे, परंतु यज्ञपुरुषदासजी को उनके दर्शन की अनुमति नहीं थी। इसीलिए वे कुछ हरिभक्तों को भगतजी के पास दर्शन के लिए भेजते। एकबार यज्ञपुरुषदासजी ने वड़ताल के ठाकुरजी का प्रासादिक पुष्पहार तथा एक सुंदर तुंबी भेंट के रूप में भेजी।

भगतजी चाणसद गाँव में बिराजमान थे। वहाँ दाजीभाई ने इन चीज़ों को भगतजी महाराज के चरणों में समर्पित किया। भगतजी प्रसन्न होकर बोले, 'वाह, यज्ञपुरुषदास! वाह, तुमने तो गज़ब कर दिया, तुमने प्रागजी के

लिए इतना कष्ट उठाया!' भगतजी के चेहरे पर शिष्य का नाम लेते ही स्नेहभाव की आर्द्रता फैल जाती थी।

भगतजी चाणसद से वड़ताल पधारे। यहाँ भगतजी के कुछ शिष्यों के साथ मिलकर यज्ञपुरुषदासजी अपने गुरु भगतजी की महिमा कहते रहते तथा दूसरों को भी भगतजी के सत्संग के लिए प्रोत्साहित करते।

कुछ साधुओं को उनकी यह प्रवृत्ति पसंद नहीं थी। एकबार ऐसे विरोधी लोग इकट्ठे होकर भगतजी के पास पहुँचे और कहने लगे, 'आपके ये शिष्य इतने बहक गए हैं कि रात-दिन आपकी ही महिमा गाते रहते हैं और कहते हैं कि अक्षरधाम की कुंजी आपके ही हाथों में है और आप ही मोक्ष के द्वार हैं, इस प्रकार पूरे वड़ताल में घर-घर में, पेड़-पेड़ पर और पत्ते-पत्ते पर यही सुनाई दे रहा है, क्या यह ठीक है?'

यह सुनकर भगतजी ने कहा कि आप चिंता न करें, मैं उनको समझा दूँगा। किन्तु वे फिर एकबार यज्ञपुरुषदासजी का नाम लेकर शिकायत करने लगे, तो भगतजी ने उनका पक्ष लेकर कहा, 'वे तो छोटे साधु हैं, उनकी बात छोड़ो, दूसरों को उलहना अवश्य दूँगा।'

दूसरे दिन भगतजी नडियाद के लिए रवाना हुए। उनके साथ यज्ञपुरुषदासजी और भक्तिजीवनदासजी भी जुड़ गए। रास्ते में अचानक भगतजी कहने लगे, 'तुम दोनों साधु भगतजी की प्रशंसा करते रहते हों; उसे कुछ लोग अपराध समझते हैं। तुम लोग ऐसा क्यों करते हो? जाओ, अभी-अभी वड़ताल लौटकर सभा के बीच साधुओं से क्षमा-याचना करो और उनको प्रसन्न करो।

दोनों संत गुरु के आदेशानुसार वड़ताल लौटे और सभी संतों को दण्डवत् प्रणाम करके सबसे क्षमायाचना की। संध्या के समय वे नडियाद जा पहुँचे।

दूसरे दिन भगतजी ने विज्ञानदासजी तथा अन्य सन्तों को उसी तरह क्षमायाचना के लिए वड़ताल जाने का आदेश दिया। यह सुनकर एक साधु ने कहा, 'आपने यज्ञपुरुषदासजी को हमारे साथ चलने के लिए क्यों नहीं कहा?'

भगतजी कहने लगे, 'वे तो अपना सूद चुकाकर आए हैं। दुबारा क्यों जाएँगे?' भगतजी हमेशा अपने प्रिय शिष्य का पक्ष लेते थे।

प्रतिदिन भगतजी और उनके साधुओं की महिमा बढ़ती गई, साथ-साथ उनके प्रति विरोध भी बढ़ता गया। जब भगतजी महाराज का शिष्य मंडल शास्त्रवचनों के अनुसार साधु और असाधु के लक्षणों की चर्चा करते, तब मंदिर में रहनेवाले असाधु द्वेष के कारण भड़क उठते और एकसाथ मिलकर इस संत मण्डल को परेशान करने लगते।

एक दिन यज्ञपुरुषदासजी वड़ताल में ठाकुरजी का दर्शन कर रहे थे कि अचानक एक द्वेषी ने आकर उनके शरीर में सुजा भोंक दिया। किसीने आकर लातें मारी, स्वामीजी ने सब कुछ धैर्यपूर्वक सहन कर लिया।

उनकी ऐसी साधुता से अनेक हरिभक्त उनकी ओर आकर्षित होने लगे। उनके प्रति लोगों का मान बढ़ता ही गया, परंतु विरोधियों की क्रोधाग्नि और अधिक भड़क उठी।

14. भगतजी : परम एकान्तिक सत्पुरुष

उत्सव के बाद वड़ताल से यज्ञपुरुषदासजी, विज्ञानदासजी, पुराणी केशवप्रसाददास आदि सन्त भगतजी महाराज के दर्शन के लिए महुवा गए। वहाँ पुराणी रघुवीरचरणदासजी ने मन्दिर में उनके निवास का प्रबंध किया।

दूसरे दिन पुराणी यज्ञपुरुषदासजी तथा संतों से पूछने लगे कि 'आप प्रागजी भक्त को क्या समझते हैं?' वे वड़ताल के इस संत मंडल की समझ को परखने की इच्छा रखते थे।

प्रश्न सुनकर यज्ञपुरुषदासजी ने कहा कि 'हम उनको परम एकान्तिक सत्पुरुष समझते हैं।'

पुराणी यह सुनकर बड़े संतुष्ट हुए।

दूसरे दिन मन्दिर में कथा प्रसंग शुरू हुआ। यहाँ फिर एकबार इसी प्रश्न की चर्चा होने लगी। स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने सोचा कि आज सभी को प्रागजी भक्त की महिमा समझाने का अच्छा अवसर मिला है।

उन्होंने तुरंत कहा कि 'वचनामृत में बताए गए गुणधर्मों के अनुसार प्रागजी भक्त वास्तव में परम एकान्तिक सत्पुरुष हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सद्गुणों से युक्त एकान्तिक सत्पुरुष से भगवान स्वामिनारायण पलभर के लिए भी दूर नहीं रह सकते। यह बात

गढ़डा प्रथम प्रकरण के 27वें वचनामृत में ठीक ढंग से लिखी गई है।

तत्पश्चात् वे वचनामृत का संदर्भ देकर, अपनी अद्‌भुत शैली में प्रागजी भक्त की साधुता की व्याख्या करने लगे। ऐसे महापुरुष से भगवान अणुमात्र भी दूर नहीं है, यह रहस्य समझाकर सभी को अपने गुरु की ओर आकृष्ट किया।

महुवा के हरिभक्तों को इस बात की प्रतीति हो गई कि प्रागजी भक्त के साथ जुड़े हुए प्रत्येक संत ज्ञान में अनन्य हैं और बड़ी समझ पूर्वक प्रागजी भक्त को गुरु मानते हैं।

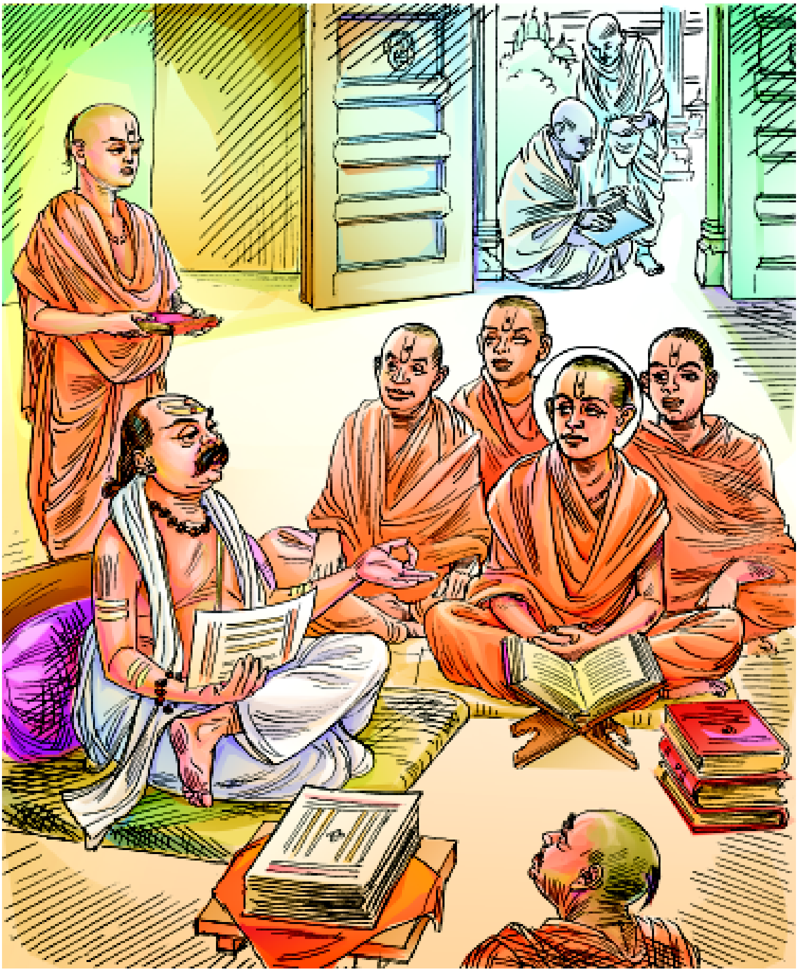
यज्ञपुरुषदासदजी की निरूपण की शैली, क्षमता एवं शास्त्रीय पद्धति से भगतजी बार-बार आशीर्वाद देकर प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने यज्ञपुरुषदास के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। यहाँ से सभी सन्त वड़ताल आ गए।

15. छोटा, पर असरदार !

वड़ताल में निश्चित किया गया कि यज्ञपुरुषदासजी को ठासरा जाकर श्रीमद् भागवत का अध्ययन करना होगा। वे ठासरा पहुँचे। पढ़ाई के साथ उन्होंने हरिभक्तों को कथावार्ता द्वारा निश्चय की अनन्य दृढ़ता करवाई।

यहाँ से कथा प्रसंग के लिए वे डभोई पहुँचे। पुराणी मुरलीधरदासजी इसी गाँव के मंदिर में रहते थे। किसी कारण उनके मन में भी भगतजी के प्रति अनादर पैदा हो रहा था, परंतु जब स्वामी यज्ञपुरुषदासजी का सत्संग हुआ, तो पुराणीजी के हृदय में प्रागजी भक्त के प्रति सद्‌भाव पैदा हो गया। भगतजी को जब इस बात की खबर मिली तो वे बोले, 'वाह! यज्ञपुरुषदास तुम भले ही छोटे हो, किन्तु इतने ही असरदार भी हो।' इतना कहकर भगतजी कहने लगे, 'यह जहाँ भी जाएगा, मुमुक्षुओं को बातें करके भगवान और सन्त का प्रत्यक्ष परिचय कराएगा।'

डभोई के हरिभक्त, यज्ञपुरुषदासजी की कथा सुनकर आनंदित हो रहे थे। पुराणी मुरलीधरदासजी भी उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे, 'वाह रे यज्ञपुरुष, वाह! तुमने तो कमाल ही कर दिया; तुम्हारी बातों से मेरी आत्मा को परम शान्ति मिली। इस बुढ़ापे तक किसी से ऐसी बातें सुनने को नहीं मिलीं। तुमने तो हद कर दी, हम सबके हठ, मान और ईर्ष्या आदि विकारों



को पिघलाकर सद्‌भाव में पलट दिया।' इतना कहकर वह वयोवृद्ध संत, युवा साधु यज्ञपुरुषदासजी को दण्डवत् प्रणाम करने लगे, परन्तु यज्ञपुरुषदासजी ने तुरन्त ही उनको रोक दिया।

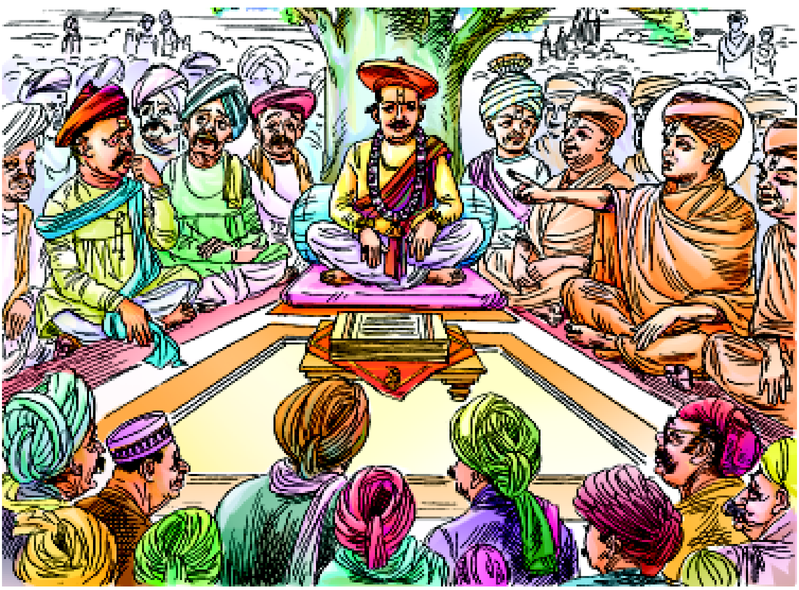
वड़ताल तथा ठासरा में उन्होंने विद्याभ्यास तो किया, परन्तु अच्छे विद्वान नहीं मिलने के कारण वे आज्ञा के अनुसार बड़ौदा गए। यहाँ रंगाचार्य नामक प्रसिद्ध विद्वान से पुनः एकबार सिद्धान्त कौमुदी की पढ़ाई प्रारंभ की। उनकी बुद्धि, स्मरणशक्ति और लगन देखकर रंगाचार्यजी के मन में स्वामीश्री

के प्रति बड़ा आदर पैदा हुआ। बातों ही बातों में वे रंगाचार्यजी को भी भगतजी की महिमा कहने लगते कि हमारे गुरु वास्तव में ब्रह्मस्वरूप संत हैं। यह सुनकर रंगाचार्यजी के मन में भी भगतजी का दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई।

16. अद्वितीय विद्वत्ता

भगतजी उन दिनों जलझुलनी के उत्सव पर गढ़पुर आनेवाले थे। वहाँ भगवान स्वामिनारायण के देहोत्सर्ग स्थान पर लक्ष्मीवाड़ी में मंदिर का निर्माण हुआ था। जहाँ मूर्तिप्रतिष्ठा के अवसर पर समग्र संप्रदाय के संतों एवं विहारीलालजी महाराज भी उपस्थित रहनेवाले थे। यज्ञपुरुषदासजी ने अवसर पाकर रंगाचार्यजी से कहा, 'यदि आप भगतजी का दर्शन चाहते हैं तो हमें गढ़पुर ही जाना पड़ेगा।

रंगाचार्यजी तुरंत सहमत हो गए। वे पहले भावनगर पहुँचे। वहाँ शंकर मत के अध्यापक के साथ शास्त्रार्थ करके उनको पराजित किया और गढ़पुर आ पहुँचे। गढ़पुर में प्रवेश करते ही प्रागजी भक्त ने संघ के साथ यज्ञपुरुषदासजी तथा रंगाचार्यजी को दर्शन दिया। भगतजी के पल-दो पल के



परिचय से ही विद्वान रंगाचार्य उनके चरणों में दंड़वत् प्रणाम करने लगे। उनको विश्वास हो गया कि यज्ञपुरुषदासजी ने जैसा वर्णन किया था, वैसे ही भगतजी महाराज ब्राह्मी स्थिति से संपन्न महान सन्त हैं।

उस उत्सव में जूनागढ़ से गुणातीत ज्ञान को दृढ़ करनेवाले बड़े-बड़े सद्गुरु उपस्थित थे। यज्ञपुरुषदासजी गुजरात के हरिभक्तों को उनके पास ले जाकर अक्षरपुरुषोत्तम की निष्ठा तथा प्रागजी भक्त की महिमा दृढ़ कराते थे।

मूर्तिप्रतिष्ठा के बाद संध्या से पूर्व लक्ष्मीवाड़ी में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। सभा में बहुत बड़े विद्वान पधारे थे। उनमें राजकोट के प्रखर वेदान्ती पण्डित महीधर शास्त्री भी उपस्थित थे।

उन्होंने अचानक उठकर सम्प्रदाय के विद्वानों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी, परंतु ऐसे प्रखर पंडित का मुकाबला करने का साहस किसी में न था। यज्ञपुरुषदासजी सोचने लगे कि यदि पंडित के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए कोई तैयार नहीं होगा, तो स्वामिनारायण सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी। वे गुरु आज्ञा से शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो गए।

युवा उम्र के साधु को शास्त्रार्थ हेतु आते देखकर पण्डित महिधर शास्त्री व्यंग्यपूर्वक हँसने लगे। यह देखकर बड़ौदा से आए रंगाचार्यजी ने उठकर कहा, 'पंडितजी हँसना मत, क्या आपको मालूम नहीं कि गुणीजनों के गुण ही पूजे जाते हैं, उनकी जाति या उम्र नहीं। कहा भी गया है कि, *'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिंगं न च वयः।'*

अब महिधर शास्त्री ने प्रश्न पूछना आरम्भ किया और यज्ञपुरुषदासजी उसका उत्तर देने लगे।

महिधर शास्त्री को धीरे-धीरे मालूम होने लगा कि आज उनका पंगा कोई सामान्य विद्वान के साथ नहीं पड़ा। महिधर शास्त्री के खजाने में से सारे तर्क देखते ही देखते समाप्त हो गए। उन्होंने अपनी हार मान ली और उठकर यज्ञपुरुषदासजी को प्रणाम किया।

विहारीलालजी महाराज, भगतजी महाराज, रंगाचार्यजी तथा सभा में उपस्थित प्रत्येक हरिभक्त का हृदय गौरव से पुलकित हो रहा था। आज यज्ञपुरुषदासजी संप्रदाय के सर्वमान्य विद्वान के रूप में प्रस्थापित हो गए। भगतजी अनन्य प्रेमभाव से अपने प्रिय शिष्य को एक टक देखते रह गये!

दूसरे दिन वे भगतजी का दर्शन करने गए, तो उनको देखते ही भगतजी बोले, 'आइए, आइए, साधुराम।' इतना कहकर शिष्य को अपने आश्लेष में भर लिया और कहा, 'अब तो आनंद पूर्वक भजन करते रहना।' इस उत्सव के बाद भगतजी महुवा पधारे तथा यज्ञपुरुषदासजी बड़ौदा के मन्दिर में अध्ययन के लिए पहुँचे।

शहर में अनेक युवा छात्र कॉलेज में पढ़ रहे थे। जब भी मौका मिलता, यज्ञपुरुषदासजी उन छात्रों को अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत की दृढ़ता करवाने लगते। एक दिन दोपहर के समय पीज गाँव के जेठाभाई दर्शन के लिए आए। वे शहर में रहकर कलाभवन में केमेस्ट्री विषय को लेकर विशेष शिक्षा ले रहे थे। उन्होंने प्रागजी भक्त के विषय में थोड़ा बहुत सुना था। उनके प्रति आदरभाव रखा करते थे। यज्ञपुरुषदासजी ने इस तेजस्वी युवक को देखा तो उनको लेकर प्रदक्षिणा की बैठक पर आसन जमा दिया। दोनों, संप्रदाय के इतिहास एवं सिद्धांतो की बातों में इतने एकाग्र हो गए कि दिन कब ढला, शाम कब हुई और रात भी समाप्त होने को आई है, परन्तु इस पर किसीने ध्यान ही नहीं दिया। लगभग प्रात:काल के चार बजे दोनों की बातें समाप्त हुई।

दोनों करीब दस से बारह घण्टे तक ज्ञान-गोष्ठी करते रहे। परिणाम यह हुआ कि जेठाभाई के हृदय में अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत की प्रतीति हो गई तथा भगतजी महाराज महाराज को ब्रह्मस्वरूप गुरु मानकर गुरु के चरणों में समर्पित होने का मन बना लिया। कुछ समय के बाद दीक्षा लेकर जेठाभाई 'स्वामी निर्गुणदासजी' बन गये, जो संप्रदाय के एक महत्वपूर्ण संत के रूप में प्रसिद्ध हुए।

रंगाचार्यजी के अनेक शिष्यों में से यज्ञपुरुषदासजी का स्थान अद्वितीय था। पढ़ाई के बाद वे भिन्न-भिन्न शास्त्रों में से अक्षर-पुरुषोत्तम की उपासना के सिद्धान्त ढूँढ़ निकालते थे। इसके साथ ही रंगाचार्य के शंकरमत का तर्कपूर्ण खण्डन भी कर देते थे। ज्ञान और भक्ति के सद्गुणों से परिपूर्ण यज्ञपुरुषदासजी को पढ़ाने में रंगाचार्यजी को विशेष आनन्द का अनुभव होता था। कभी-कभी वे बोल पड़ते थे कि *'अस्मिन् सम्प्रदाये एकमेव'* अर्थात् इस सम्प्रदाय में यह एक मात्र और अनन्य महापुरुष हैं।

17. हृदय की स्वच्छता का साधन

गढ़डा के 'जलझुलणी' उत्सव पर भगतजी ने यज्ञपुरुषदासजी को आदेश दिया था कि यदि विहारीलालजी महाराज, आपको विशेष पढ़ाई के लिए आज्ञा दें, तो आप राजकोट के विद्वानों से शिक्षण प्राप्त करना; परंतु पढ़ाई के लिए काशी तक जाना अच्छा नहीं है। इतना कहकर वे हरिभक्तों से बोले, 'यह यज्ञपुरुषदास तो आप सभी के हृदय के विकारों को स्वच्छ करने का एक उत्तम साधन है, क्या आप, उनको भी गँवाना चाहते हैं? यदि वह पढ़ाई के लिए दूर गए, तो आप सभी क्या करेंगे?'

भगतजी द्वारा दिए गए इस निर्देश के दो उद्देश्य थे; एक तो दूर न जाकर भी संस्कृत की पढ़ाई जारी रहे तथा राजकोट से निकट आनेवाले जूनागढ़ शहर के मंदिर से उनका संपर्क भी बना रहे और इस मंदिर में अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के कृपापात्र शिष्य जागा भक्त के साथ भी स्वामीश्री का सम्पर्क बना रहे। यज्ञपुरुषदासजी तो ऐसे महान संत की संगति चाहते ही थे।

अंततः विहारीलालजी महाराज ने उनको राजकोट जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। वहाँ के मन्दिर में उनके निवास का प्रबंध किया गया।

महाराजश्री ने एक चिट्ठी लिखकर स्थानीय संतों-भक्तों को सहयोग देने की सिफारीश की थी। राजकोट में महिधर शास्त्री के पुत्र जीवनराम शास्त्री स्वामीश्री के शिक्षागुरु थे। वे विद्वान तो थे ही, साथ साथ सरल और निरभिमानी थे। उन्हीं के द्वारा स्वामीजी ने अपनी पढ़ाई प्रारम्भ की। उनकी कुशाग्र बुद्धि एवं त्यागपूर्ण धर्मनिष्ठा देखकर जीवनराम शास्त्री मन ही मन उन्हें नमन करते और हृदय में इनके प्रति अपार पूज्यभाव रखते थे।

राजकोट में निवास के दौरान यज्ञपुरुषदासजी, सत्संगी छात्रों को पढ़ाई में मार्गदर्शन देते और साथ ही अक्षर-पुरुषोत्तम की उपासना की बातें भी किया करते। वे उनको समझाते कि जूनागढ़ में जागाभक्त जैसे एकांतिक संत विद्यमान हैं, अतः हमें उनका सत्संग करना चाहिए और आप सभी को भी एकादशी या पूर्णिमा के दिन वहाँ जाकर उनकी कथा सुननी चाहिए। वे स्वयं बार-बार जूनागढ़ जाते और जागा स्वामी तथा अन्य संतों से अक्षरपुरुषोत्तम की निष्ठा सुदृढ़ करते।

उनकी इस प्रवृत्ति से कुछ साधु चौकन्ने हो उठे। उन्होंने भोले-भाले हरिभक्तों को बहकाया कि यज्ञपुरुषदासजी तुम्हारे लड़कों को निर्जल उपवास करने को सिखाता है, उनको जूनागढ़ भेजता है, कभी कभी मन्दिर में ही रोककर कथा करता रहता है, वह ठीक नहीं है। आप लोग अपने-अपने लड़कों को नहीं रोकेंगे, तो वह उनको फुसलाकर साधु बना देगा। यह सुनकर कच्चे कान के हरिभक्त उत्तेजित हो उठे और यज्ञपुरुषदासजी का अपमान करने की योजना बनाने लगे।

हरिभक्तों ने मिलकर एक दिन जूनागढ़ के सद्‌गुरु बालमुकुन्द स्वामी से शिकायत की, तो उन्होंने यज्ञपुरुषदासजी का पक्ष लेते हुए कहा, 'तुम लोग क्या समझते हो? पहले तो तुम्हारे पुत्र मंदिर में आते तक नहीं थे, परन्तु आज वे मन्दिर में आकर सेवा करते हैं, यहीं पर रहते हैं, निर्जल उपवास करते हैं, क्या यह सबकुछ तुम्हारे लड़कों के बिगाड़ने के लक्षण हैं या सुधारने के? आप सब बिना सोचे-समझे उल्टा-सीधा बके जा रहे हैं, यह ठीक नहीं है। यज्ञपुरुषदास जो भी करते हैं, ठीक करते हैं।'

इतने बड़े संत की इतनी स्पष्ट बात सुनकर कोई कुछ भी नहीं बोल पाया। यज्ञपुरुषदासजी उस समय हाथ में माला लिए चुपचाप बैठे हुए थे।

18. जागा भक्त के आशीर्वाद

जूनागढ़ में जागा भक्त की ज्ञानवार्ता सुनने के लिए बड़े-बड़े सद्‌गुरु और अनेक हरिभक्त भी एकत्रित हो जाते थे। यह देखकर कुछ द्वेषियों के हृदय में द्वेष की अग्नि भड़क उठती थी। वे जूनागढ़ के स्वामिनारायण मंदिर के कोठारी जीभाई से जागा भक्त के विषय में शिकायतें करने लगे। अंततः जीभाई ने जागा भक्त पर प्रतिबंध लगवा दिया कि वे सभा में अथवा अपने आसन पर ज्ञानवार्ता न करें। कथावार्ता करना तो जागा भक्त का जीवन था। वे इस प्रतिबंध के कारण अत्यंत उदास रहने लगे।

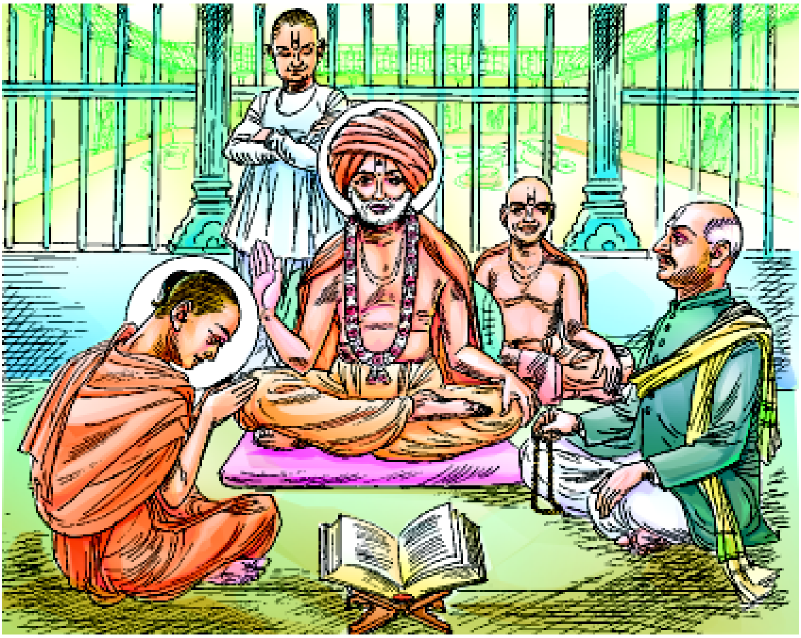
राजकोट में यज्ञपुरुषदासजी को जब यह खबर मिली, तो वे तुरन्त जूनागढ़ पहुँच गए। ठाकुरजी का दर्शन करके वे सीधे जागा भक्त के कमरे के ओर जाने लगे। बीच में ही कुछ लोग कहने लगे कि स्वामीजी, आपको मालूम नहीं कि वहाँ जाने पर कोठारीजी ने प्रतिबंध लगा दिया है?

उनके रोकने पर स्वामीजी ने स्पष्टरूप से कहा कि भले ही कोठारीजी ने मना किया हो, परंतु मेरे लिए कोई प्रतिबंध नहीं है। यह कहते हुए वे सीधे जागा भक्त के कमरे में पधारे। उनको दण्डवत् प्रणाम किया और वहीं पर बैठ गए। जागा भक्त चौंककर कहने लगे, 'अरे, यज्ञपुरुषदास, तुम यहाँ इस समय कैसे? मेरे कमरे में आने पर तो बिल्कुल प्रतिबंध लगा दिया गया है! तुम यहाँ कैसे आए?'

इतना कहते ही जागास्वामी का कंठ गद्गद हो गया। यह देखकर स्वामीजी ने कहा, 'आप इसकी चिंता ना करें। आप पर लगा प्रतिबंध आज से उठ गया समझो। स्वामी! आप उदास मत होना, मैं आज ही कोठारीजी को समझाऊँगा ताकि वे प्रतिबंध तो हटा दें, जिससे आपको अपनी अनुभव वाणी कहने का अधिकार भी प्राप्त हो जाए। आपको तो कथावार्ता करनी ही है।'

संध्या के बाद यज्ञपुरुषदासजी, जागा स्वामी के कमरे से बाहर आए और मंदिर के कोठारी जीभाई को एकान्त में बुलाकर जागा भक्त की महिमा कहने लगे। सारी रात उन्होंने इस ब्रह्मवेत्ता संत की महिमा समझाई।

कोठारीजी का हृदय पश्चात्ताप से पसीजने लगा। उन्होंने अपनी गलती



स्वीकार की। स्वामीजी प्रातःकाल होते ही विश्राम के लिए चले गए, परंतु जीभाई की नींद उचट गई थी। वे स्नान पूजा के बाद तुरंत जागा भक्त के कमरे में गए, उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और कहने लगे, 'स्वामी, मुझे क्षमा कीजिए। समझो कि आज से आप पर लगे प्रतिबंध उठ गए। अब आप सभा में बैठकर हरिभक्तों को कथा सुनाएँ, ऐसी मेरी प्रार्थना है। कुछ लोगों के कहने पर मुझे गलतफहमी हो गई थी, परंतु यज्ञपुरुषदासजी ने वास्तविक स्थिति बताकर योग्य मार्गदर्शन करके मुझे भारी पाप से बचा लिया है।' इन दीन वचनों के साथ कोठारी ने बार-बार क्षमा-याचना की। जागा भक्त प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

कोठारी के जाते ही जागा भक्त अनन्त गुण एवं अगणित कलाओं से विभूषित स्वामी यज्ञपुरुषदासजी से मिलने के लिए आतुर हो उठे। समय होने पर वे जागा भक्त के कमरे में पधारे और उनके चरणों में दंडवत् प्रणाम करने लगे। जागा भक्त ने उनको उठाकर सीने से लगा लिया और कहा, 'आ गए! साधुराम, बहुत प्रतीक्षा करवायी!' वे बहुत देर तक स्वामीश्री को सीने से लगाए रहे, बाद में स्वामीश्री ने कोठारी जीभाई को किस प्रकार समझाया था, वह घटना को सुनाई।

यज्ञपुरुषदासजी पर जागा भक्त की प्रसन्नता की कोई सीमा न थी! आनंद के उसी प्रवाह में उन्होंने कहा, 'स्वामी, मुमुक्षुओं के मोक्ष का द्वार बन्द हो गया था, जिसे आज तुमने आकर खोल दिया है। आज से मेरे द्वारा जो भी सत्कर्म होंगे तथा जीवों का जो कल्याण होगा, उसका पूरा पुण्य मैं तुम्हारे लिए समर्पित करता हूँ।'

यज्ञपुरुषदासजी ने हाथ जोड़कर केवल इतना ही कहा कि आप मुझ पर प्रसन्न रहिए और आपकी कृपादृष्टि मुझ पर बनी रहे, इतना ही आशीर्वाद दीजिए।

इस प्रसंग के बाद प्रत्येक संत और हरिभक्त के हृदय में एक विचार दृढ़ हो गया कि यज्ञपुरुषदासजी वास्तव में सम्प्रदाय के अमूल्य रत्न हैं। वे जूनागढ़ से राजकोट पधारे। एक दिन उनको जूनागढ़ के कोठारी का पत्र मिला। जिसमें लिखा था कि आप 'सत्संगिजीवन' के पारायण में कथा कहने के लिए जूनागढ़ पधारें। यज्ञपुरुषदासजी कथा प्रसंग के लिए पुनः जूनागढ़ आ पहुँचे।

19. समर्थ वक्ता

बोटाद के नगरसेठ शिवलालजी के पौत्र हरिलाल सेठ 'सत्संगिजीवन' की कथा–पारायण करवा रहे थे। चार पुराणी वारी–वारी से कथा कह रहे थे। तीनों पुराणियों के बाद यज्ञपुरुषदासजी की वारी अंत में आती थी। कथा कहने की उनकी अनोखी शैली, वचनामृत का ज्ञान तथा अन्य शास्त्रों के प्रमाण देने की विद्वता देखकर सभी चकित रह जाते थे। वे शास्त्रों के विभिन्न दृष्टान्त देते हुए, कथा के साथ धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति की बातें कहकर सभी को बड़े सरल ढंग से अध्यात्म मार्ग पर प्रेरित करते थे।

दूसरे दिन कथा प्रारंभ होते ही लोग सेठजी को बुलाने के लिए पहुँचे; तो सेठजी ने कहा कि जब यज्ञपुरुषदासजी कथा कहने के लिए व्यासपीठ पर बिराजमान हों, तभी मुझे बुलाना।

यह सुनकर कुछ साधु नाराज हो गए और ईर्ष्या के कारण जलने लगे। जब पूर्णाहुति का दिन आया, तब एक साधारण सी बात पर बहस होने लगी कि चारों पुराणियों में से किसका पूजन सबसे पहले किया जाए?

सेठजी ने जब यह बात सुनी, तो स्पष्टरूप से कह दिया कि जिसकी कथा के द्वारा भक्तों को विशेष आनन्द की अनुभूति हुई हो, उनकी ही प्रथम पूजा करनी चाहिए। मेरे हिसाब से यज्ञपुरुषदासजी ही प्रथम पूजन के लिए योग्य पुराणी हैं और उनकी ही प्रथम पूजा होनी चाहिए। इस निर्णय से साधुओं को बहुत बुरा लगा पर वे क्या कर सकते थे!

अंततः एक साधु रघुवीरचरणदास खड़ा हुआ और यज्ञपुरुषदासजी को नीचा दिखाने के लिए दुष्ट आशय से बोलने लगा कि आज तो जिनके गुरु दर्जी एवं मोची हैं, ऐसे लोग सभा में बड़े माने जाते हैं और पूजे जाते हैं।

यह सुनते ही यज्ञपुरुषदासजी सिंहगर्जना करते हुए बोल उठे, 'सुनो भाई, सुनो, गुरु होने का अधिकार केवल भगवाधारियों के लिए ही नहीं है, यदि आप गुणातीतानन्द स्वामी के कृपापात्र और एकान्तिक स्थिति के धारक प्रागजी भक्त तथा भक्त शिरोमणि जागा भक्त में जातिभाव देखेंगे, तो श्रीजीमहाराज सहन नहीं कर पाएँगे।' इतना कहकर वह अपने आसन पर बिराजमान हो गए।

इसके पश्चात् जब हरिदास सेठ, यज्ञपुरुषदासजी का पूजन करने आगे बढ़े तो उन्होंने विनयपूर्वक सेठजी को रोका और वयोवृद्ध साधु हरिदासजी का पूजन सर्वप्रथम करवाया तथा अपना पूजन अन्त में ही करने दिया।

वहाँ से यज्ञपुरुषदासजी वापस राजकोट लौटकर पुनः विद्याभ्यास प्रारंभ कर दिए। उन्होंने वेदान्त में सबसे पहले ब्रह्मसूत्रों पर शांकरभाष्य पढ़ा। बाद में उन्हीं सूत्रों पर रामानुजभाष्य पढ़ाने के लिए जीवनराम शास्त्री से अनुरोध किया।

शास्त्री ने उत्तर दिया कि मैं रामानुजभाष्य पढ़ा ही नहीं हूँ। यह सुनकर स्वामीजी ने कहा, 'आप मुझे केवल शब्दार्थ समझाइए, उसकी टीका और उसका भावार्थ मैं स्वयं कर लूँगा।'

धीरे-धीरे रामानुजभाष्य में जीवनराम की रुचि बढ़ने लगी। शांकरमत के उनके संस्कारों में परिवर्तन होने लगा। अन्त में उन्होंने रामानुज के मत का आश्रय लिया। उसके बाद जब गोपालानन्द स्वामी का गीताभाष्य पढ़ा, तब तक वे पूरे भक्तिमार्गी बन चुके थे। यज्ञपुरुषदास ने उनको सत्संगी बनाकर जागाभक्त से वर्तमान धारण करवाया।

20. सच्चे गुरुभक्त

स्वामी यज्ञपुरुषदासजी भगतजी महाराज के प्रति अनन्य गुरुभाव रखते थे। वे जानते थे कि प्रागजी भक्त को 32 साल पूर्व केवल ब्रह्म-परब्रह्म के तत्त्वज्ञान का प्रवर्तन करने के 'अपराध' में जूनागढ़ के स्वामिनारायण मन्दिर से बहिष्कृत कर दिया गया था। अब उसी स्थान पर उनका भव्य सम्मान किसी भी तरह करना चाहिए, यही उनके हृदय की एकमात्र अभिलाषा थी। वे सोच रहे थे कि गुरु के सम्मान का भव्य प्रसंग मेरे हाथ सम्पन्न हो, उससे बड़ा गुरुभक्ति का अवसर अन्य क्या हो सकता हैं ?

उनको खबर मिली की जूनागढ़ में जन्माष्टमी के अवसर पर वडताल से विहारीलालजी महाराज आ रहे थे। उन्होंने तुरंत अपना 'चक्र' गतिमान कर दिया। उन्होंने सोचा कि यदि प्रागजी भक्त भी विहारीलालजी महाराज के साथ उसी ट्रेन द्वारा जूनागढ़ पधारें, तो सैकड़ों हरिभक्तों के सांन्निध्य में प्रागजी भक्त का भी भव्य सम्मान हो सकता है। इस अवसर पर प्रागजी

भक्त को आमंत्रित करने के लिए स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने विहारीलालजी महाराज से आग्रह पूर्वक निवेदन किया। महाराजश्री ने भी स्वामीश्री की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

यह समाचार सुनते ही स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने भगतजी के स्नेही शिष्य मंडल के सैकड़ों हरिभक्तों को पोस्टकार्ड द्वारा यह खबर पहुँचा दी।

जूनागढ़ में उन्होंने मंदिर के कोठारी जीभाई को प्रागजी भक्त की अपार महिमा सुनाई थी। परिणाम यह हुआ कि वे भी प्रागजी भक्त का भव्य सन्मान करने के लिए तैयार हो गए। जिस प्रकार महाराज श्री का सम्मान होनेवाला था, उसी प्रकार का सम्मान भगतजी महाराज का भी हो, ऐसी संरचना स्वामी यज्ञपुरुषदासजी ने पहले से ही कर रखी थी।

32 साल पूर्व सं. 1921 में प्रागजी भक्त को मन्दिर से बहिष्कृत किया गया था। आज उन्हीं आचार्यजी की आज्ञा से वे पुनः जूनागढ़ आ रहे थे।

दोनों के स्वागत के लिए एक ही प्रकार की दो घोड़ा-बग्घी तैयार की गई थी। भगतजी के लिए भी चारपाई और मशरू की गद्दी डलवा दी गई थी। आचार्यजी के साथ गुरु का भी खूब धूमधाम से स्वागत किया गया।

भगतजी के सत्संग के लिए गुजरात से अनेक हरिभक्त जूनागढ़ आ पहुँचे थे। इस अवसर पर जूनागढ़ी संतों के साथ भगतजी महाराज द्वारा गुणातीतज्ञान का सागर उमड़ने लगा। जागा भक्त के आसन पर भी दिवस-रात कथावार्ता होती रही। सर्वत्र ब्रह्मानंद फैलने लगा।

21. अभयदान देने की आज्ञा

भगतजी जूनागढ़ से गोंडल पधारे। अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के देहोत्सर्ग स्थान पवित्र 'अक्षरदेहरी' में दर्शन करके, उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा, 'यहाँ तो हज़ार दीपों से अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की आरती उतारी जाएगी और भव्य मन्दिर का निर्माण होगा।'

यहाँ उन्होंने अपने प्रिय शिष्य स्वामी यज्ञपुरुषदासजी से उनके विद्याभ्यास की चर्चा की। इसके पश्चात् उन्होंने कहा कि अब तुम शास्त्रविद्या पढ़ चुके और ब्रह्मविद्या भी मैंने तुम्हें पढ़ा दी है। अब आप जिस प्रकार की शांति, संतुष्टि और आनंद में निमग्न रहते हो, उसी प्रकार से

जीवन जीना, दूसरों को भी सिखाना तुम्हारा कर्तव्य है।

गोंडल से बिदा होकर वे महुवा पहुँचे। यहाँ आकर उन्होंने गंभीर बीमारी ग्रहण कर ली। उन दिनों यज्ञपुरुषदासजी राजकोट में विद्याभ्यास कर रहे थे। भगतजी की खबर मिलते ही, वे दिन-रात गुरु स्मरण में लीन रहने लगे। उनका मन कही नहीं लगता था। बिना आज्ञा के महुवा जाना भी ठीक नहीं था।

प्रागजी भक्त की बीमारी प्रतिदिन बढ़ती गई और संवत् 1954 कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन उन्होंने अपनी जीवन-लीला समेट ली।

जिस समय पत्र द्वारा स्वामीश्री[1] को राजकोट में यह समाचार मिला, अचानक उस आघात को सहन करने की स्थिति में वे न थे। क्योंकि अंत समय पर वे गुरु की सेवा-शुश्रूषा का लाभ नहीं पा सके। गुरु के जाने से मानो सबके प्राण ही चले गए।

उदास मन से वे स्नान के लिए कुएँ के पास बैठे थे। उसी वक्त भगतजी ने उनको दिव्य दर्शनदान दिया, अपने हाथों से गुलाब और बेला का पुष्पहार स्वामीश्री के गले में पहनाया और कहा, 'साधुराम, इतने उदास क्यों हो गए? मैं कहीं नहीं गया, मैं तो तुम्हारे स्वरूप में समा गया हूँ।'

भगतजी का दर्शन होते ही, स्वामीश्री का शोक दूर हो गया, हृदय अपार आनंद से छलकने लगा।

अब स्वामीश्री जागा भक्त के पास जूनागढ जा पहुँचे। उन्होंने स्वामीश्री को बहुत सांत्वना दिया। स्वामीश्री ने जागा भक्त से कहा कि मुझे दु:ख इस बात का है कि मैं भगतजी की सेवा हेतु, अन्तिम क्षणों में महुवा न जा सका, जिससे उनकी सेवा से वंचित रह गया।

जागा भक्त उनकी गुरुभक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि ठीक है, तुम इसका शोक मत करो, मैं अपने अन्तिम अवस्था में सेवा के लिए तुम्हें बुला लूँगा।'

यह सुनकर स्वामीश्री का मन शांत हो गया।

स्वामीश्री की बढ़ती प्रतिष्ठा से उनके प्रति कुछ संतों का तेजोद्वेष

---

1. अब इसके बाद पंक्तियों में 'यज्ञपुरुषदास' के बदले 'स्वामीश्री' संबोधित किया जाएगा।

बढ़ने लगा। ईर्ष्यावश वे विहारीलालजी महाराज के आगे कुछ न कुछ बहाना निकालकर स्वामीश्री की निन्दा करते रहते। उदास होकर उन्होंने स्वामीश्री को राजकोट से वरताल बुला लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वामीश्री के विद्याध्ययन पर पूर्ण विराम लग गया।

स्वामीश्री को दूसरी सेवा का आदेश दें कि उससे पूर्व ही, वे सं. 1955 में अक्षरनिवासी हो गए। महाराजश्री के देहोत्सर्ग के बाद गोवर्धनभाई कोठारी ने निश्चय किया कि अब शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी की क्षमता का उपयोग वरताल संस्थान के लिए करना चाहिए।

अत: उन्होंने गढ़डा के कोठारी भीमजीभाई के हाथों, सारंगपुर में कष्टभंजन हनुमानजी के मन्दिर का कार्यभार लेकर उसकी पूरी जिम्मेदारी स्वामीश्री के हाथों में सौंप दिया। उनके सहायक के रूप में प्रभुदास कोठारी को चुना गया। गोर्वधनभाई के इस निर्णय से भीमजीभाई के मन असंतोष की आग भड़क उठी। वे, अकारण ही स्वामीश्री और भगतजी महाराज के साथ स्नेहभाव रखनेवाले संतों के प्रति ईर्ष्या-भाव रखने लगे।

परंतु स्वामीश्री किसी के भी द्वेष की परवाह किये बिना अपने सेवा कार्य में व्यस्त हो गये। सारंगपुर में उन्होंने श्रीहरि के प्रासादिक स्थानों का जीर्णोद्धार करना प्रारम्भ किया। वे हनुमानजी के छोटे से मन्दिर को महालय का स्वरूप देने लगे। इस काम के लिए विशेष भूमि संपादन की आवश्यकता थी, जिसे स्वामीश्री ने राज्य-शासन के अधिकारियों के सहयोग से सम्पन्न की। इस प्रकार हनुमान मन्दिर की शोभा में चार चांद लग गए। स्वामीश्री के प्रति स्नेहभाव रखनेवाले सैकड़ों हरिभक्त, स्वामीश्री के सत्संग के लिए बड़ी संख्या में सारंगपुर आते रहते और मन्दिर की आर्थिक तथा श्रमपूर्ण सेवाओं में सहयोग देते। इस प्रकार मन्दिर की आर्थिक स्थिति भी सुधरने लगी। अच्छे प्रबंधक के रूप में स्वामीश्री की प्रतिष्ठा चारों ओर फैल गई। वड़ताल के कोठारी भी उनकी ऐसी क्षमता देखकर प्रसन्न एवं प्रभावित हुए।

सं. 1957 में जागा भक्त ने 'डांगरा' गाँव में अंतिम बीमारी ग्रहण की। यह समाचार स्वामीश्री को दिया गया और वे तुरन्त डांगरा पहुँचे। जागा भक्त उनकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने सभी को आदेश दे रखा था कि यज्ञपुरुषदास के आते ही, उन्हें मेरे पास भेज देना।

स्वामीश्री के आते ही जागा भक्त ने कहा, 'आ गए न! बहुत प्रतीक्षा करवाई!' इतना कहकर बड़े प्यार से उन्होंने स्वामीश्री को सीने से लगा लिया।

जागा भक्त की स्थिति अत्यंत गंभीर देखकर स्वामीश्री बहुत दुःखी हुए। उन्होंने जागा भक्त की हर सम्भव सेवा शुरू कर दी। जागा भक्त ने कहा, 'मेरा काम अब समाप्त हो गया, मुझे अब अक्षरधाम में जाना है। जीवन की अंतिम घड़ी में सेवा के लिए ही तुम्हें बुलाया है, अब तुम्हारा कार्य आरम्भ होगा। सबसे बड़ा कार्य, अक्षरपुरुषोत्तम की निष्ठा का विश्व भर में प्रवर्तन करना है।

भगवान स्वामिनारायण और गुणातीतानन्द स्वामी तुम्हारे उस कार्य में सदैव साथ रहेंगे।' वहाँ रहकर स्वामीश्री ने दो दिनों तक उनकी अपार सेवा की। माघ शुक्ला 10वीं की रात, वे अक्षरधाम सिधार गये। भौतिक शरीर के त्याग के बाद, श्रीजी-स्वामी तथा मुक्तगण, उन्हें विमान में अपने साथ ले गए। ऐसा दिव्य-दर्शन पाकर सभी धन्य हुए। जागा भक्त की उत्तर क्रिया के बाद स्वामीश्री पुनः सारंगपुर वापस आ गए।

22. उपासना प्रवर्तन के लिए प्रेरणा

स्वामीश्री, हरिभक्तों के साथ सौराष्ट्र के पंचतीर्थों की यात्रा के लिए निकले थे। सारंगपुर से जब जूनागढ़ पहुँचे, तो अष्टांगयोगी संतवर्य स्वामी गोपालानन्दजी के शिष्य 85 वर्षीय तपोवृद्ध साधु केशवजीवनदासजी से उनकी मुलाकात हुई। उन्होंने कहा, 'स्वामीजी, आप तो गुणातीतानन्द स्वामी को अक्षरब्रह्म समझकर उनके प्रति निष्ठा रखते हैं और बड़े-बड़े महान संतों के कृपापात्र हैं। अतः मेरा निवदेन है कि आप भगवान स्वामिनारायण के साथ अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी की मूर्ति एक साथ क्यों नहीं प्रतिष्ठित करवाते? गोंडल में शिखरबद्ध मंदिर की रचना करके, हम दोनों की मूर्तियाँ एकसाथ स्थापित करना चाहते थे, परन्तु विरोध के कारण ऐसा नहीं हो सका।'

यह सुनकर स्वामीश्री ने कहा, 'यदि गुणातीतानन्द स्वामी के शिष्य और महान सद्गुरु बालमुकुन्ददासजी का आदेश हो, तो वह काम करने के लिए मैं तैयार हूँ।'

तब बालमुकुन्ददासजी अपनी अनुमति देते हुए कहा, 'अक्षर और पुरुषोत्तम की स्वर्ण प्रतिमा एक साथ ही प्रतिष्ठित हो, तो मैं अत्यंत प्रसन्न होकर समर्थन दूँगा।'

यह सुनकर स्वामीश्री के विचारों को नई ताक़त मिली।

इसके पहले पहले स्वामीश्री जब जूनागढ़ पधारे थे, तब जागा भक्त ने भी उनको कहा था कि आप शिखरबद्ध मंदिर का निर्माण करके महाराज और स्वामी की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाएँ।

तब स्वामीश्री ने उत्तर दिया था कि स्वामी, हमें एक पैसे का पोस्टकार्ड भी यदि चाहिए, तो कोठार में जाकर भीख मांगनी पड़ती है, ऐसी हालत में लाखों रुपयों के मन्दिर कैसे बनवाए जा सकते हैं?

जागा भक्त ने कहा था, 'अक्षर और पुरुषोत्तम की उपासना प्रवर्तन का संकल्प तो स्वयं श्रीजीमहाराज का था। उस संकल्प की पूर्ति के लिए कार्य आरंभ करो; तुम यदि इस कार्य का संकल्प नहीं करते तो तुम्हारी कमी है और यदि हम उसको पूरा करने में सहयोग न दें, तो हमारी कमी है।'

जागा भक्त की आज्ञा को अपना जीवनमंत्र बनाकर स्वामीश्री ने इस चुनौती को पूर्ण करने हेतु अधीर हो उठे थे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अनुकूल समय की प्रतीक्षा करने के लिए असीमित धैर्य की आवश्यकता है।

अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की निष्ठा का प्रवर्तन ही अब उनका लक्ष्य था, इसीलिए वे बार-बार गुजरात तथा सौराष्ट्र के गाँवों में जाकर हरिभक्तों को यह बात समझाते रहते। रात-दिन वे इसी प्रवृत्ति में लगे रहते थे। इस काम में उन्हें न तो किसी प्रकार का आलस्य महसूस होता और न ही किसी प्रकार की थकान लगती। बीमारी की तो वे कोई परवाह ही नहीं करते थे। उनकी साधुता और प्रतिभा देखकर बाल-वृद्ध सभी उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे।

मध्य गुजरात के गाँवों में स्वामीश्री का विचरण बार-बार होता रहता, जिसके कारण कुछ द्वेषी साधु स्वामीश्री के विरुद्ध प्रचार करने से चूकते नहीं थे। वे कहते कि 'यज्ञपुरुषदास मन्दिर का काम छोड़कर मध्य गुजरात में विचरण करते रहते हैं, जिसके कारण मन्दिर के विकास में की प्रगति में रुकावट आती है। अतः उनकी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना आवश्यक है।'

द्वेषियों द्वारा किए जा रहे झूठे प्रचार का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा; क्योंकि वास्तविक परिस्थिति कुछ और ही थी। सारंगपुर में मन्दिर-विकास का कार्य निरंतर जारी रहा। अब तो धीरे-धीरे आमदनी भी बढ़ गई थी। इसके साथ ही अतिरिक्त भूमि की व्यवस्था करके नए धर्मशाला तथा आचार्य के निवास का निर्माण-कार्य भी तेजी से चल रहा था।

उन दिनों अचानक खबर मिली कि अहमदाबाद के आचार्य श्री का देहावसान हो गया है और उनके उत्तराधिकारी के रूप में पहले से ही निश्चित किए गए कुंजविहारीप्रसादजी को बहिष्कृत करके संप्रदाय के संविधान का उल्लंघन करके मात्र तीन साल की उम्र के वासुदेवप्रसादजी को आचार्य पद पर नियुक्त कर दिया गया! स्वामीश्री को भी यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ साधुओं-सत्संगियों की इस साजिश को, निर्मलदासजी, त्यागवल्लभदासजी आदि अग्रणी संतों ने अनुचित कहकर उसे चुनौती दी।। कुंजविहारीप्रसादजी का पक्ष लेकर उन्होंने भारी हंगामा किया, परंतु वे सफल नहीं हुए। इसके बाद इन साधुओं ने सुरेन्द्रनगर जिले के वढवाण गाँव में अलग गद्दी स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ किया, परंतु उनके पास न तो पर्याप्त साधन था, न ही साधुओं और हरिभक्तों की पर्याप्त संख्या ही थी।

ऐसी दशा में भाँति-भाँति के विरोधों को सहन करने अथवा उसका प्रतिकार करना उन लोगों के लिए अत्यंत ही कठिन था। निर्मलदासजी आदि संतों ने गाँव में किसी तरह जमीन का संपदान करके मंदिर-निर्माण का निर्णय लिया। परंतु भूमि तभी मिल सकती थी, जब गाँव के ठाकुर साहब का सहयोग हो और ठाकुर साहब का सहयोग लीमडी के ठाकुर साहब के कहने पर ही मिल सकता था। उनसे सिफारिश करने के लिए यज्ञपुरुषदासजी ही एक मात्र समर्थ संत थे। क्योंकि वे लीमडी स्टेट के दीवान साहब झवेरभाई के गुरु थे।

निर्मलदासजी ने सोचा कि 'सारे संसार में निडर और बेजोड़ यही एक सत्पुरुष हैं। उनके सहयोग से हमारा काम अवश्य पूरा हो सकता है। स्वामीश्री के शिष्य इतने निष्ठावान थे कि स्वामीश्री के कहने पर अपने प्राण भी न्योछावर करने के लिए तैयार रहते थे। वे लोग आर्थिक सेवा करने में भी समर्थ थे।

निर्मलदासजी ने तुरंत स्वामीश्री से मुलाकात की और वढ़वाण में नए मन्दिर के निर्माण में सहायता करने का निवेदन किया।

स्वामीश्री के मन में इस प्रस्ताव के साथ ही एक अद्‌भुत विचार का उद्‌भव हुआ। उन्होंने सत्य का पक्ष रखनेवाले निर्मलदासजी को हृदयपूर्वक सहयोग देना स्वीकार किया और सहायता देने के लिए सबसे पहले उन संतों को अक्षर और पुरुषोत्तम के सिद्धांत की सत्यता समझाई। इसके साथ ही उन्होंने एक शर्त रखते हुए कहा, 'यदि आप वढ़वाण में निर्मित होनेवाले मंदिर में अक्षर तथा पुरुषोत्तम की युगल मूर्तियों की प्रतिष्ठा करने के लिए तैयार हों, तो मैं आपको भूमि संपादन के लिए अवश्य सहायता कर सकता हूँ।' निर्मलदासजी ने इस शर्त को सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वामीश्री ने उसी समय लीमडी के दीवान तथा अपने प्रिय शिष्य झवेरभाई को भूमि दिलवाने के लिए एक चिट्ठी लिख दी। बहुत ही कम समय में वढवाण में भूमि प्राप्त करके मंदिर-निर्माण का कार्य प्रारंभ हो गया।

23. आपत्तियों का आरम्भ

कुछ सतर्क लोगों को स्वामीश्री की इस योजना का पता चल गया। उन्होंने अनुमान लगा लिया कि यज्ञपुरुषदास वड़ताल में रहते हुए भी अक्षर-पुरुषोत्तम की निष्ठा का प्रसार करने के लिए, बहिष्कृत किए गए संतों को वढवाण में स्थायी होने के लिए, उनका सहयोग कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप उन्होंने इस पर अपनी आपत्ति और विरोध प्रकट करना शुरू कर दिया। उधर स्वामीश्री इन सब विरोधों और आपत्तियों की परवाह किए बिना, दिन-रात कथावार्ता करके हरिभक्तों को प्रसन्न कर रहे थे। अपने इस आध्यात्मिक अभियान में वे गुजरात के गाँवों में विचरण करते हुए सत्संगियों के हृदय में अक्षरपुरुषोत्तम की निष्ठा भी प्रस्थापित कर रहे थे। स्वामीश्री का जहाँ एक या दो दिन तक का भी निवास होता, वहाँ भी समग्र गुजरात के कोने-कोने से कथा-श्रवण के लिए हरिभक्तों की भीड़ उमड़ पड़ती थी।

स्वामीश्री एक बार बड़ौदा पधारे हुए थे।

रात्रि के समय उन्होंने कथा का आरंभ किया। वे निष्कुलानंद स्वामी रचित चौसठपदी ग्रंथ से 'सन्त-असन्त लक्षण' पर निरूपण कर रहे थे। यह

सुनकर कुछ द्वेषी साधुओं ने समझा कि यज्ञपुरुषदास कथा की आड़ लेकर हमारी ही निन्दा कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप वे लोग कुहराम मचाते हुए चिल्लाना शुरु कर दिया, 'पापियों! अब तो हमें सोने दो!' इसी के साथ ही उन लोगों ने अपशब्दों और गालियों की बौछार शुरु कर दी। परंतु स्वामीश्री के कथा-प्रवाह में कोई रुकावट नहीं हुई।

अब तो द्वेषी साधुओं की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी।

उन्होंने ईंटों और पत्थरों से बंगले पर हमला बोल दिया। हो-हल्ला सुनकर सोये हुए लोग जाग उठे। द्वेषियों ने मौका पाकर बंगले को आग लगाने की साज़िश रची, ताकि यज्ञपुरुषदासजी हमेशा के लिए समाप्त हो जाए और 'न रहे बाँस न बजे बाँसुरी!' ऐसा सोचकर वे किरासन लेकर बंगले पर छिड़कने लगे।

यह देखकर पड़ोस में रहनेवाले जयशंकर की माँ जोरों से चिल्लाने लगी। क्योंकि उसका पुत्र जयशंकर उसी बंगले में स्वामीश्री के साथ था। इतने कोलाहल में भी स्वामीश्री के चेहरे पर अपूर्व शान्ति थी। न तो किसी का डर था न परिस्थितियों की चिन्ता। 'श्रीहरि की इच्छा के अनुसार ही सब कुछ होता है' ऐसा मानकर वे अविचल बिराजमान थे, परंतु वहाँ बैठे हुए हरिभक्त उत्तेजित हो रहे थे।

मोतीभाई, जयशंकर को लेकर बाहर निकले। साधुओं ने उसे जाने दिया। मोतीभाई दौड़कर वरिष्ठ हरिभक्त घनश्यामभाई वैद्य को जगा आए। उन्होंने तुरन्त कानूनी कार्रवाई की। कोतवाल और पुलिस को लेकर वे जब बंगले के पास आ पहुँचे, तो वहाँ बंगले को जला देने की तैयारियाँ चल रही थी। कोतवाल ने क्रोधित होकर कहा, 'मन्दिर के दरवाजे खोल दो, वरना दरवाजा तोड़ दिया जाएगा।'

साधुओं ने डर के मारे दरवाजा खोल दिया और वहाँ से भागकर नौ-दो-ग्यारह हो गए। कोतवाल ने अंदर घुसकर देखा कि चारों ओर ईंट, पत्थर और काँच के टुकड़े बिखरे हुए थे। कोतवाल को स्थिति की भयंकरता को समझने में देर न लगी। उन्होंने साक्ष्य इकट्ठे करने तथा प्राथमिक रिपोर्ट दर्ज करवाने के लिए स्वामीश्री से निवेदन करते हुए कहा, 'उन साधुओं के नाम बताइए ताकि उन्हें गिरफ्तार किया जा सके।' परंतु स्वामीश्री ने कहा : 'हम

किसी पर आरोप लगाना नहीं चाहते। कोई भी हमारा शत्रु नहीं है, अतः आपसे निवेदन है कि आप कोई कार्रवाई न करें।'

कोतवाल, स्वामीश्री की उच्चकोटि की साधुता देखकर विस्मित हो गया और प्रणाम करके वहाँ से वापस लौट गया। इसके बाद स्वामीश्री, मोतीभाई के साथ उनके छात्रालय में चले गए और वहाँ से सारंगपुर के लिए प्रस्थान किए।

द्वेषियों का विरोध तो निष्फल हुआ ही, इसके साथ ही इस कुकृत्य से वे बदनाम भी हो गए। इसी घटना के बाद उनका रोष और भी भड़क उठा। उन्होंने सोचा कि यज्ञपुरुषदास तो चले गए, अब क्या करना चाहिए।

उन्होंने वड़ताल और गढ़डा के साधुओं को भी उकसाया। वे जोरशोर से नए पैंतरे रचने लगे। सारंगपुर के मंदिर का व्यवस्थापन गढ़डा के कोठारी के हाथों से निकल गया था। इसीलिए वे दुःखी थे।

उन्होंने स्वामीश्री को बदनाम करने के लिए बातें फैलाना शुरू किया कि 'यज्ञपुरुषदास शास्त्री ने सारंगपुर के कोठार से 60,000 रुपये उठाकर लीमड़ी के दीवान झवेरभाई के यहाँ रख दिए हैं और उन्हीं रूपयों से वढ़वाण के साधु मन्दिर निर्माण कर रहे हैं।'

चूँकि स्वामीश्री धन और स्त्री से कोसों दूर रहनेवाले पवित्र त्यागी थे। इसलिए उनको ऐसे आक्षेपों की तनिक भी परवाह नहीं थी। परंतु उनका पक्ष रखनेवाले शिष्यों ने सोचा कि 'जो रात-दिन कथावार्ता में तन्मय रहते हैं, महाराज और स्वामी की महिमा बढ़ाने के लिए कार्यरत रहते हैं और किसी के प्रति जिनके मन में राग-द्वेष नहीं होते, ऐसे स्त्री और धन के त्यागी महान सन्तविभूति के प्रति ऐसा द्वेष और तिरस्कार कैसे सहन किया जा सकता है? उन्होंने गोवर्धनभाई कोठारी को पत्र लिखकर सावधान किया कि 'शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी के प्रति वड़ताल में रहनेवाले अनेक साधुओं का राग-द्वेष बिना कारण ही बढ़ता जा रहा है। इसलिए हम आपको सावधान करते हैं कि हमसे बिना पूछे शास्त्रीजी के विषय में कोई भी गलत निर्णय लिया गया तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।'

गुजरात के प्रतिष्ठित हरिभक्तों की स्वामीश्री के प्रति ऐसी अनन्य निष्ठा देखकर कोठारी महाराज भी चकित रह गए।

24. प्रौढ़ प्रताप

कोठारीजी ने स्वामीश्री को वड़ताल बुलाकर वीरसद गाँव में मन्दिर निर्माण के लिए वहीं रोक दिया। हरिभक्तों को यह खबर मिलते ही वे स्वामीश्री के सत्संग के लिए वड़ताल आने लगे। उन दिनों वड़ताल में स्वामीश्री के आसन पर सैकड़ों हरिभक्तों की भीड़ जमने लगी। कथा प्रसंग में स्वामीश्री ने अक्षर-पुरुषोत्तम के सिद्धांत की बातें स्पष्टरूप से कही और उन दो स्वरूपों की समानरूप से सेवा करने की महिमा समझाई। उन्होंने कहा कि वढवाण में सबसे प्रथमबार अक्षर तथा पुरुषोत्तम की मूर्तियों की प्रतिष्ठा होनेवाली है, उसमें सेवा अर्पण करके श्रीजीमहाराज की प्रसन्नता प्राप्त करने का अवसर आ चुका है। आपको वहाँ सेवा करके इष्टदेव के सिद्धांत का गौरव बढ़ाना है। स्वामीश्री के आह्वान से देखते ही देखते मूर्तियों के लिए ढाई हज़ार रुपयों की सेवा घोषित हो गई। उस ओर कोठारी तथा विरोधी साधुओं ने समझा कि स्वामीश्री वीरसद के मन्दिर के लिए यह प्रयास कर रहे हैं।

स्वामीश्री ने अहमदाबाद में निर्मल स्वामी को बुलाकर कहा था कि अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की मूर्तियों की कीमत हम देंगे, आप मूर्तियाँ बनवाने के लिए जयपुर जाएँ, तो हमें सूचित करना, ताकि हमारा आदमी आपके साथ आकर हमारे नक्शे के अनुसार मूर्तियों का निर्माण करा सके। ऐसी पक्की व्यवस्था करके उन्होंने गोंडल के राजमिस्त्री एवं कुशल शिल्पी पुरुषोत्तमदास को जयपुर भेजा।

अन्य मूर्तियों के लिए निर्मलदासजी वड़ोदरा पधारे। स्वामीश्री ने वड़ोदरा स्थित स्वामिनारायण मन्दिर के कोठारी जेठा भगत को कहा कि निर्मलदासजी की व्यवस्था में तनिक भी कसूर न हो। जेठा भगत ने स्वामीश्री की आज्ञा से उनकी अद्‌भुत व्यवस्था की और पर्याप्त मान-सम्मान के साथ पूर्ण सहयोग दिया।

भरूच में स्वामीश्री ने एक दिवसीय वचनामृत पारायण का लाभ दिया। जहाँ सारे गुजरात से करीब एक हज़ार हरिभक्त एकत्र हुए थे। स्वामीश्री ने 'सन्त ही मोक्ष का द्वार है' इस विषय पर सैद्धांतिक प्रवचन किया।

सर्वत्र स्वामीश्री की सफलता की खबर पाने पर द्वेषियों के पेट में

जलन-सी पैदा होने लगी, 'यज्ञपुरुषदास के पीछे हज़ारों हरिभक्त आकृष्ट होते हैं। उनको रसोई देते हैं। उन्हीं की सेवा करते हैं, और पाँच हरिभक्त भी हमारे पास नहीं आते, ऐसा क्यों? यज्ञपुरुषदास निर्भय होकर खुले चौक में तथा सभाखंडों में अक्षरपुरुषोत्तम की बातें करता है, वड़ताल में रहते हुए भी निर्मलदासजी का पक्ष लेता है, उनकी व्यवस्था सम्हालने के लिए वे वड़ोदरा के जेठा भगत को कहता है, इतना करने पर भी उनको कोई भी कुछ भी नहीं कहते। यह तो हद हो गई!

कोठारी गोरधनभाई भी उनका पक्ष लेने लगे हैं। यदि ऐसा ही चलता रहा तो यज्ञपुरुषदास केवल वड़ताल को ही नहीं; सारे सम्प्रदाय को अपने वश में कर लेगा; वह मालिक बनकर बैठेगा, तब हमारी कीमत फूटी कौड़ी की भी नहीं रहेगी!' यह सोचकर वे उनको परेशान की तरकीबें खोजने लगे। स्वामीश्री उनकी बातों की परवाह किए बिना गाँव-गाँव विचरण करते रहे।

एक दिन कोठारी गोवर्धनभाई ने स्वामीश्री को बुलाकर कहा, 'स्वामी, यहाँ के साधु आपका सर्वनाश करने के लिए आमादा हुए हैं, वे आपकी प्रतिष्ठा-आपका प्रताप कतई नहीं सह सकते, आप जहाँ भी जाते हैं, वहाँ समैया-उत्सव होता है, हज़ारों आदमी आपकी ओर आकर्षित होते हैं, यह उनसे नहीं देखा जाता। अत: मेरा निवेदन है कि आप अपनी प्रवृत्ति कम कर दें तो अच्छा होगा।'

स्वामीश्री ने विनयपूर्वक कहा, 'हम तो एकत्र होकर कथावार्ता और भगवान का भजन-स्मरण करते हैं, इससे लोग आकर्षित होते हैं और उन्हें इसी में ऐश्वर्य दिखाई देता है, तो हमारा क्या दोष? हम तो श्रीहरि के आदेश के अनुसार अपना कर्तव्यमात्र निभाते हैं। हम सत्संग की प्रथा के विरुद्ध तो कुछ भी नहीं करते। यदि आपको सबूत चाहिए तो वड़ताल में ही एक बार कथा प्रसंग का आयोजन करें।' स्वामीश्री की बात सुनकर कोठारी बहुत प्रसन्न हुए। वैसे उनका तो स्वामीश्री पर प्रेम था ही। वे तो सारंगपुर का मन्दिर, हवेली और धर्मशाला आदि देख चुके थे, अत: उनकी कार्यशक्ति पर मुग्ध थे।

अन्य साधुओं को शान्त करने के लिए तथा उनकी चिन्ता और उपाधि दूर करने के लिए कोठारी ने स्वामीश्री को सारंगपुर मन्दिर की व्यवस्था से मुक़्त कर दिया, और उनको वड़ताल बुला लिया।

25. वढवाण में अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की प्रतिष्ठा

स्वामीश्री वड़ताल से वसो पधारे थे।

वढवाण में मन्दिर निर्माण के बाद मूर्तिप्रतिष्ठा की तैयारी हो रही थी। विरोध के कारण स्वामीश्री के लिए वहाँ उपस्थित रहना असंभव था। उन्होंने कुछ निष्ठावान हरिभक्तों को अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की मूर्तिप्रतिष्ठा के प्रसंग पर वढवाण जाने का आदेश दिया था। वहाँ के नए आचार्य कुंजविहारीप्रसादजी तथा साधु पहले ही वचनबद्ध थे कि हम नूतन मंदिर के मध्य शिखर में अक्षरपुरुषोत्तम की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करेंगे। फिर भी स्वामीश्री के मन में दहशत थी कि यदि ऐसा करने में अवश्य विरोध पैदा होगा। उन्होंने हरिभक्तों से कहा था कि यदि विरोध होने लगे तो आप अवश्य आग्रह रखें कि मूर्तियों की प्रतिष्ठा भले ही प्रथम खण्ड में की जाए। जब मूर्तिप्रतिष्ठा संपन्न हो, तुरंत मुझे तार से खबर दे देना।

प्रतिष्ठा के दिन स्वामीश्री की दहशत सत्य साबित हुई। अहमदाबाद के सन्तों ने स्वामीश्री के सिद्धांत से विरुद्ध प्रचार किया। अत: कुंजविहारीप्रसादजी तथा निर्मलदासजी आदि संतों पर दबाव डाला जाने लगा कि अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की प्रतिष्ठा मध्य शिखर में नहीं होनी चाहिए, पर स्वामीश्री के द्वारा भेजे गए हरिभक्तों ने इस बात का जमकर विरोध किया और उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाई कि स्वामीश्री ने इसी एक मुख्य शर्त पर आपको भूमि के लिए सहायता दी थी और अपनी जान को खतरे में डालकर उन्होंने आपके पक्ष का समर्थन किया है। यह विरोध सुनकर दोनों पक्ष समाधान पर उतर आए कि मन्दिर के मध्य शिखर न सही प्रथम देहरे में मूर्तियों की प्रतिष्ठा की जानी चाहिए। इस निर्णय के अनुसार प्रतिष्ठा सम्पन्न की गई। इस प्रकार विश्वभर में सब से पहले शुद्ध उपासना का सर्वप्रथम विजयघोष वढवाण में हुआ।

प्रतिष्ठा के बाद आनंदावेश में सभी स्वामीश्री को तुरन्त तार करना भूल गए थे। उन्होंने शाम के समय तार भिजवाया। परंतु उस ओर स्वामीश्री को वसो से वड़ताल बुला लिया गया था।

जब वसो में टेलिग्राम के द्वारा समाचार आया तब स्वामीश्री वड़ताल

पहुँच चुके थे। उन्होंने भाईलाल को कहा था कि तुम्हें मेरा टेलिग्राम लेकर वड़ताल आना ओर वहाँ कि खबर देना। वे तार आते ही रात्रि के 10 बजे के बाद वड़ताल पहुँचे। दरवाजे खुलवाकर उन्होंने स्वामीश्री को तार दिया, पढ़कर वे इतने प्रसन्न हुए कि वे तुरंत गोवर्धनभाई कोठारी के पास जा पहुँचे। उन्होंने कहा, 'महाराज, वढवाण अक्षरपुरुषोत्तम महाराज विराजमान हो गए।' वे समाचार सुनते ही स्तब्ध हो गए। जिन्होंने जीवनभर अपनी सत्ता के बल पर शुद्ध उपासना का यह कार्य रोक रखा था, उन्होंने स्वयं को आज पराजित महसूस किया। वे उदास मन से इतना बोल सके कि 'जैसी श्रीजीमहाराज की मर्जी।'

स्वामीश्री ने तुरंत उत्तर दिया, 'महाराज, यह कार्य श्रीजीमहाराज ने ही किया है।'

कोठारी गुस्से में आकर स्वामीश्री को कहने लगे, 'जा, मुझ से मुँह मत दिखा।' स्वामीश्री यह सुनकर मुस्कराने लगे। दूसरे दिन स्वस्थ होकर कोठारी ने स्वामीश्री को अपने पास बुलवाया। और किस प्रकार शुद्ध उपासना के स्वरूप बिराजमान हुए उसकी पूरी बातें बता दी। कोठारी स्तब्ध होकर सुनते रहें। उनको विश्वास हो गया कि यह साधु हमारे पूरे सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ाएगा।'

जब वढ़वाण में शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी सफल हुए तब द्वेषी साधु मन ही मन उनका भारी विरोध करने लगे। उन्होंने सोचा था कि इतना करने पर भी कोठारी अथवा आचार्यश्री उनको नहीं रोकते; ऐसा करने पर तो आज इसने यहाँ बैठे हुए आज वढ़वाण में मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई, तो कल तो न जाने वह का क्या कर डालेगा? वह सारे सत्संग को अपनी मुठ्ठी में कर लेगा तो हम तो हाथ मलते ही रह जाएँगे! फिर हमें कौन पूछेगा?' ऐसा सोचकर सभी अपने-अपने आसन पर एकत्र होकर यज्ञपुरुषदास को किस तरह हराया तथा हटाया जाए इसकी योजना बनाने लगे।

स्वामीश्री तो जहाँ जाते निर्भय होकर अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत की बातें किया करते। एक बार वे बोचासण पधारे। यहाँ श्रीजीमहाराज का प्रासादिक राम मंदिर था। परन्तु जर्जरित होने के कारण रामलक्ष्मण की मूर्तियाँ वहाँ एक कोने में रखी हुई थी। स्वामीश्री ने पुराने मन्दिर की वे मूर्तियाँ अपने

निवास पर मंगवाई और पाठ पर स्थापित करके कहा, 'यहाँ–बोचासण गाँव में एक विशाल शिखरबद्ध मन्दिर होगा। उसमें साक्षात् अक्षरपुरुषोत्तम महाराज मध्यमन्दिर में विराजमान होंगे। उसी दिन इन मूर्तियों की भी पुनः प्रतिष्ठा की जाएगी।'

यह सुनकर विस्मित हुए हरिभक्तों ने पूछा, 'स्वामी! ऐसा भव्य मन्दिर कब बनेगा?'

स्वामीश्री ने कहा, 'तीन वर्षों में तैयार हो जाएगा और आप उसे देखेंगे।' सब गहरी सोच में उतर गए कि क्या कोई अजीब घटना बनने वाली है?

क्योंकि वड़ताल के साधुओं ने तो स्वामीजी के विरुद्ध बखेडा खड़ा कर दिया है, ऐसे समय में मन्दिर निर्माण के लिए सोचा भी कैसे जा सकता है? परन्तु सभी को स्वामीश्री की वाणी पर विश्वास था।

बोचासण से वीरसद होकर स्वामीश्री चिकित्सा के लिए चाणसद पधारे। जहाँ ज्ञानवार्ता से उन्होंने सभी को प्रसन्न किया।

26. वड़ताल में अक्षरपुरुषोत्तम का जयघोष

चैत्री पूर्णिमा का उत्सव आ रहा था। स्वामीश्री अस्वस्थता के कारण वड़ताल पहुँचने में असमर्थ थे। फिर भी वहाँ साधुओं की झंझट के कारण सबको लगता था कि कुछ उपद्रव अवश्य होगा।

स्वामीश्री ने तो पहले से ही कल्पना कर ली थी कि वड़ताल में हमारे विरुद्ध बुलाई गई सभा में सभी आपस में ऐसे लड़ेंगे कि शायद हमारा नाम भी नहीं लिया जाएगा।

स्वामीश्री की आज्ञा लेकर चाणसद से कालीदासभाई और कुछ हरिभक्त वड़ताल आ पहुँचे।

उनके बिदा होते ही स्वामीश्री ने गाँव के शूरवीर हरिभक्त गलभाई को बुलाया और धीरे से पूछा, 'क्या वड़ताल की सभा में उठकर आप अक्षरपुरुषोत्तम की जयघोषणा करने की हिम्मत रखते हैं?'

गलभाई ने देखा की स्वामीश्री की आँखों में एक अद्‌भुत तेज चमक रहा था। बिलकुल विरोधी वातावरण में अक्षरपुरुषोत्तम के जयघोष की हिम्मत करना एक प्रकार से मौत को दी गई दावत थी। परन्तु गलभाई

अलग मिट्टी के बने भक्त थे। उन्होंने कहा, 'यदि आपकी इच्छा और आज्ञा हो, तो मैं कुछ भी करने की हिम्मत रखता हूँ।'

स्वामीश्री ने कहा कि वड़ताल जाकर पूर्णिमा की उत्सव सभा में अक्षरपुरुषोत्तम का जयघोष करना।

गलभाई आज्ञा होते ही तुरन्त वड़ताल के लिए निकल पड़े।

दस हज़ार से अधिक हरिभक्तों से खचाखच भरा हुआ सभामंडप आचार्य श्री की प्रतीक्षा में था। जैसे ही वे पधारे गलभाई उठकर सिंहासन के ठीक पास खड़े होकर बुलन्द स्वर में 'सहजानन्द स्वामी महाराज की जय' का नारा लगाया। सब लोगों ने जयघोष दुहराया। लोगों का स्वर शांत हो उससे पहले उनके गले से 'अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की जय' का नारा फूट पड़ा। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने अनजाने में जयघोष करके पूरा वातावरण गुंजित कर दिया। लेकिन जब वे होश में आए, तो सभी की जीभ पर लकवा-सा मार गया। सभी एक दूसरो की ओर मूर्खों की भाँति देखने लगे। कुछ तो गलभाई पर ऐसा क्रोध करने लगे कि उनका कचूमर निकाल दें, परन्तु वे इस शूरवीर भक्त की आँखों से निकल रही चिनगारियाँ देखकर मन मसोसते रह गए।

सारी सभा में ऐसी खलबली मची की किसी को कथा सुनने का मन ही नहीं कर रहा था। मंदिर के कोने-कोने में शास्त्रीजी के इस शिष्य की अपार हिम्मत की लगातार चर्चा हो रही थी कि शास्त्री के शिष्यों की इतनी हिम्मत! अब तो शास्त्री को वड़ताल से बहिष्कृत करना ही एक मात्र उपाय है, अन्यथा ये अपने प्रभाव से सारा संस्थान वश में कर लेगा।

द्वेषी साधुओं को इस जयघोष से इतना करारा धक्का लगा था कि उन्होंने दोपहर को फिर एक बार द्वेष उगलने के लिए दूसरी सभा का आयोजन किया। गढ़पुर मंदिर के कोठारी भीमजीभाई कहने लगे, 'शास्त्री यज्ञपुरुषदास ने सारंगपुर से पिटारा भरकर रुपये उठाये हैं और वढवाण में होने वाले मन्दिर के लिए भेजकर वहाँ की पुष्टि की है। उससे हिसाब क्यों नहीं माँगा जाता?'

यह सुनते ही स्वामीश्री के शिष्य कालिदास का खून खौल उठा। उन्होंने तमककर कहा, 'आप को ऐसा आक्षेप लगाने से पहले शर्म आनी चाहिए। जिस साधु ने मंदिर की सालाना दो-तीन हज़ार की आमदनी आज बाईस हज़ार तक पहुँचा दी है। अरे! पूरे मन्दिर की शान बदल कर बंगला,

धर्मशाला, चाँदी के किवाड़ आदि कई नूतन निर्माण संपन्न किया है। ऐसे महान संत के विरुद्ध आप इतने गंदे आक्षेप करके उनके पीछे क्यों पड़े हो? ऐसे सदाचारी और साधुता से परिपूर्ण सन्त के विषय में कोठारी गोवर्धनभाई सब कुछ जानते हैं। फिर वे क्यों मौन हैं? मेरी तो समझ में नहीं आता!'

यह सुनते ही कोठारी बोल उठे कि ऐसी आक्षेप बाजी करना कुछ साधुओं की तथा भीमजीभाई की साज़िश है, परन्तु शास्त्रीजी के लिए दोषारोपण करना बिलकुल गलत है। उनकी पवित्रता पर मुझे कोई शंका नहीं।' इतना कहकर वे सभा से उठकर चले गए। उसके बाद सभी साधु एक-दूसरे पर आक्षेप करके घंटों तक लड़ते रहे।

परन्तु स्वामीश्री के विरुद्ध किसी भी नतीजे पर नहीं पहुँच पाए। स्वामीश्री की भविष्यवाणी सच सिद्ध हुई।

27. विरोध की आँधी

स्वामीश्री स्वस्थ होते ही वड़ताल पधारे। यहाँ उन्होंने वचनामृत के कथा-पर्व का आयोजन किया। सारे गुजरात से सैकड़ों हरिभक्त वड़ताल पधारे थे। उस अवसर पर कुछ साधुओं के साथ गोवर्धनभाई भी स्वामीश्री की कथा सुनने के लिए विराजमान होते थे।

एक दिन जब कोठारी खुशाल भक्त ने उनको देखा तो आश्चर्य से पूछने लगे, 'अरे! कोठारी महाराज आप भी इस बागी साधु (यज्ञपुरुषदासजी) का साथ क्यों देते हैं?'

गोवर्धनभाई बहुत हिम्मतपूर्वक स्वामीश्री का पक्ष लेते, यह किसी को पसन्द नहीं था। आज भी उन्होंने ऐसा ही उत्तर दिया, 'खुशाल भगत, वड़ताल के दो हज़ार त्यागियों में शास्त्री यज्ञपुरुषदास जैसे हर प्रकार से स्त्री तथा धन का परिपूर्ण एवं शुद्ध त्यागी मैंने आज तक नहीं देखा, उनकी बातें मुझे शक्कर के टुकड़े की तरह मीठी लगती हैं। इसलिए मैं यहाँ आता हूँ और उनका पक्ष लेता हूँ।' यह सुनते ही खुशाल भगत वहाँ से चलते बने।

स्वामीश्री ने अपना आसन गोवर्धनभाई के आसन के पास ही रखा था। साथ ही उनके चारों ओर संप्रदाय के वरिष्ठ हरिभक्त रहा करते थे, इसलिए विरोधी लोग चाहने पर भी कुछ नहीं कर सके। स्वामीश्री की सेवा करनेवाले



'वरताल के दो हज़ार साधुओं में शास्त्री यज्ञपुरुषदास जैसा सर्व प्रकार से धन-स्त्री का त्यागी, आज तक मैंने देखा ही नहीं।'

- कोठारी गोरधनभाई

इतने बड़े हरिभक्तो को देखकर विरोधी साधु मन ही मन जलने लगे।

विहारीलालजी महाराज के देहविलय के बाद उनके स्थान पर केवल आठ वर्षीय बालक लक्ष्मीप्रसादजी को आचार्य पद पर स्थापित किया गया था। वे केवल 11-12 वर्ष की उम्र में ही रजोगुणी हो गये थे। गोवर्धनभाई की सूचना से स्वामीश्री ने उनको बुलाकर एक बार सदाचारी रहकर संयम बरतने का उपदेश दिया था। परन्तु लक्ष्मीप्रसादजी को इसी कारण स्वामीश्री के प्रति दुर्भाव पैदा हो गया। वे भी स्वामीश्री के प्रति विरोधवृत्ति रखनेवाले साधुओं को परोक्षरूप में सहयोग देने लगे।

स्वामीश्री कथा, भजन, ध्यान तथा हरिभक्तों की सेवा में रहकर अक्षरपुरुषोत्तम का ज्ञान प्रसारित करते रहते। परन्तु द्वेषी साधु उनको परेशान करने के लिए विभिन्न युक्तियाँ आजमाने लगे। वे चालू कथा में मिर्ची की धूनी लगाकर चले जाते। जिससे हरिभक्तों को उठकर भागना पड़ता था। वे यदि और कहीं जाकर बैठते, तो वहाँ पानी से भरा मटका लाकर उडेल देते, जिससे लोग तितरबितर हो जाते और सभा बिखर जाती। परन्तु ये हरिभक्त निश्चय और स्वामीश्री के प्रति हुए गुरु भाव से विचलित होने वाले नहीं थे।

28. विषम देशकाल

पूरे वड़ताल संस्थान में धीरे-धीरे स्वामीश्री के विषय में भयंकर विरोध का माहौल खड़ा हो रहा था। कई साधु उनको देखते ही गुस्से से तिलमिलाकर अनाप-शनाप बकने लगते। कई उनको मारने-पीटने के लिए लिए तैयार हो जाते। ऐसी स्थिति में वड़ताल मंदिर खतरे से खाली नहीं था। कई स्नेही हरिभक्त मिलकर स्वामीश्री को समझा रहे थे कि आपको शीघ्र ही वड़ताल छोड़ देना चाहिए। क्योंकि द्वेषी साधु न जाने क्या कर बैठे!

संवत् 1962 की कार्तिक पूर्णिमा के उत्सव पर अनेक हरिभक्त वड़ताल आए थे। स्वामीश्री पर मंडरा रही मौत का खौफ उनको बेचैन बना रहा था। वे स्वामीश्री को क्षण भर के लिए भी के लिए भी अकेले नहीं छोड़ते थे। इसीलिए द्वेषी साधुओं को स्वामीश्री को परेशान करने के लिए कोई अवसर नहीं मिल रहाथा।

कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन स्वामीश्री उपवास के बाद पारणा के

लिए जा रहे थे। परन्तु हरिभक्तों ने उनको चेतावनी देते हुए कहा, 'स्वामीजी आपको वहाँ नहीं जाना चाहिए। खबर मिली है कि वे लोग आपकी खिचड़ी में जहर डाला दिए हैं।' स्वामीश्री स्नेही हरिभक्तों की चेतावनी सुनकर स्मित करने लगे और कहा, 'ऐसा तो नहीं हो सकता।

साधु को तो हमेशा मंदिर की भोजन शाला में ही भोजन करना चाहिए, वह अपने आसन पर अलग भोजन नहीं मँगा सकता।' वे भोजन के लिए भंडार में में गए। सारे हरिभक्त चिन्तातुर स्थिति में बाहर खड़े थे।

स्वामीश्री के पत्तल में खिचड़ी परोसते ही उनको मालूम हो गया कि इस में कातिल विष मिलाया गया है। परन्तु वे प्रसाद का अनादर नहीं कर सकते। खिचड़ी के एक-दो कौर लिए थे कि उनका सिर चकराने लगा। हरिभक्त दौड़कर भीतर आ गए। स्वामीश्री को उठाया और तुरन्त आसन पर ले गए। स्वामीश्री का गला जल रहा था। हरिभक्तों ने घी लाकर पिला दिया। स्वामीश्री ने चिंतातुर को हिम्मत दिलाते हुए कहा, 'मुझे कुछ भी नहीं होगा। आप लोग चिन्ता न करें। सभी के आश्चर्य के बीच स्वामीश्री की रक्षा हुई। उन्होंने ज़हर को भी पचा लिया। आसुरी बुद्धि के लोगों को आश्चर्य हुआ। अब तो वे सोच रहे थे कि ऐसा पैंतरा रचेंगे कि अब की बार यज्ञपुरुषदास किसी तरह नहीं बच पाएगा।

दूसरे दिन उन्होंने स्वामीश्री को जलते हुए चूल्हे में जबरदस्ती धक्का मारकर जला देने का आयोजन किया। परन्तु स्वामीश्री उस दिन भी बाल-बाल बच निकले। क्योंकि स्वामीश्री के पीछे करीब पन्द्रह हरिभक्त उपस्थित थे। साधुओं ने उनको बाहर भगाने की बहुत कोशिश की कि 'आप लोग बाहर चले जाइए।' परन्तु सभी हरिभक्त वहाँ डटे रहे।

उन्होंने कहा, 'जब तक यज्ञपुरुषदासजी भोजन करके बाहर नहीं आएँगे, हम यहाँ से तिल भर भी नहीं हटेंगे।'

यह सुनकर कुछ साधु हरिभक्तों को धक्का मार कर भगाने लगे।

इसी आपाधापी का लाभ लेकर चार-पाँच हरिभक्त भण्डार के भीतर घुस गए और स्वामीश्री को उठाकर बाहर चले गए। कुछ देर तक तो वहाँ ऊधम मचा रहा। आखिर जब पता चला कि यज्ञपुरुषदास तो कभी के चले गए हैं, तो वे गालियाँ बकते हुए चले गए।

29. मन्दिर और सत्संग से अलग नहीं

स्वामीश्री का पक्ष रखनेवाले हरिभक्त अब सावधान हो गए थे। सब सोच रहे थे कि ऐसी स्थिति में क्या किया जा सकता है। उन्होंने सोचा कि यदि रुंदेल गाँव के मन्दिर का निर्माण कार्य स्वामीश्री को सौंप दिया जाए, तो यहाँ से निकला जा सकता है।

उन्होंने कोठारी गोवर्धनभाई के पास अपना प्रस्ताव रखा, परन्तु उन्होंने सभी को आचार्यश्री के पास भेजा दिया। इसी प्रकार हरिभक्त वहाँ से यहाँ तथा यहाँ से वहाँ, बार-बार आते रहे और जाते रहे गए, परन्तु वे अनुमति पाने के लिए सफल नहीं हुए।

अन्त में गोवर्धनभाई ने कहा, 'आप सब हरिभक्त मिलकर आचार्यश्री पर थोड़ा सा दबाव डालकर देखिए। साथ-साथ मेरी एक बात पर ध्यान देना कि शास्त्रीजी महाराज को इस बार आप यहाँ अकेले छोड़कर नहीं निकलना वर्ना कुछ भी हो सकता है।'

यह सुनकर सभी स्तब्ध रह गए। उनका भय उचित था। स्वामीश्री को किसी भी तरह वड़ताल छोड़ देना चाहिए।

सभी ने पुनः एक बार स्वामीश्री के चरणों में निवेदन किया, परन्तु वे अपने निश्चय में अडिग थे। उनको किसी का डर नहीं था। उन्होंने कहा, 'शरीर यदि समाप्त होता है, तो होने दो, लेकिन यहाँ से अलग होने की बात न करो। भगतजी महाराज ने मुझे कहा था कि यदि तुम्हारे शरीर के टुकड़े हो जाएँगे, तो मैं उन्हें जोड़ दूँगा; लेकिन तुम वड़ताल का दरवाजा छोड़ने की बात कभी न सोचना।'

स्वामीश्री की स्पष्ट वाणी सुनकर सभी गहरी सोच में पड़ गए।

पूर्णिमा के दिन उत्सव सभा संपन्न हुई। उसी दिन सुबह राजकोट के भक्त राज कृष्णजी अदा उनके पास आ पहुँचे। उन्होंने सारी बातें सुनीं, स्वामीश्री को एकान्त में ले जाकर चर्चा की; स्वामीश्री की स्पष्ट रुचि देखी तो अदाश्री ने कहा, 'स्वामीजी, आपने जो भी कहा, ठीक है; परन्तु अब मेरी बात सुनिए। श्रीहरि ने शिक्षापत्री में देशकाल के अनुसार व्यवहार करने की आज्ञा दी है, इसीलिए आपको यहाँ रहना उचित नहीं है।'

अदाश्री की बात सुनकर स्वामीश्री सोचने लगे कि गुणातीतानन्द स्वामी के कृपापात्र एवं अक्षरधाम के मुक्त अदाश्री जैसे महापुरुष भी यदि ऐसी ही आज्ञा करते हैं, तो अवश्य यह स्वयं श्रीहरि की इच्छा है। उन्होंने तुरन्त हाथ जोड़कर कहा : 'अदाश्री, आप कहते हैं तो मैं मानता हूँ कि स्वयं भगतजी ही आप के द्वारा मुझे आदेश दे रहे हैं। अब मैं आपके आदेश के अनुसार ही करूँगा।'

यह सुनकर सभी हरिभक्त प्रसन्न हो गए। उन्होंने स्वामीश्री को आशीर्वाद दिया। हरिभक्तों की चिन्ता अब दूर हो गई।

उत्सव के बाद स्वामीश्री के हितैषी सारे हरिभक्त आचार्यश्री के पास स्वामीश्री के मण्डल के लिए अनुमति पत्र देने का निवेदन किया और उन्हें बोचासण भेजने की प्रार्थना की। परन्तु आचार्य लक्ष्मीप्रसादजी ने गुस्से में कहा, 'उनको बोचासण के लिए अनुमति पत्र कौन देगा? उन्हें यदि जाना ही है तो जाएँ, सारा देश पड़ा है। जहाँ चाहे वहाँ, जा सकते हैं।' यह सुनकर हरिभक्त अत्यन्त आहत हुए।

स्वामीश्री ने भी लक्ष्मीप्रसाद का यही अभिप्राय सुना तो कहने लगे, 'हम तो किसी भी हालत में मन्दिर और सत्संग से अलग होना नहीं चाहते; परन्तु यदि श्रीजीमहाराज की इच्छा हुई तो दूसरी बात है।'

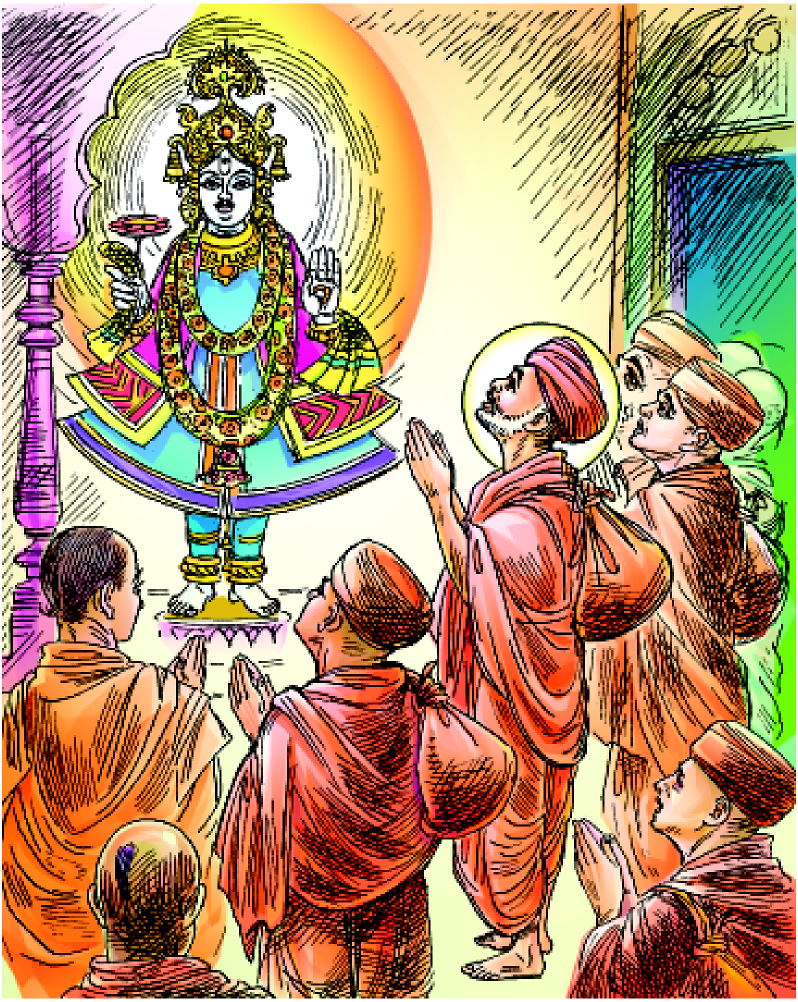
इसके बाद पुरुषोत्तम स्वामी नामक एक संत को वड़ताल में ठहरने की आज्ञा देते हुए स्वामीश्री कहने लगे, 'हम तो यहाँ से जा रहे हैं, आप चार दिन के बाद आकर हमें आशी अथवा वहरा गाँव में मिलना। यदि ये लोग हमारे पढ़ने के पुस्तक तथा अन्य चीज़ें लाने की अनुमति दें, तो सब कुछ लेकर आ जाना। अन्यथा बोचासण पहुँचकर हमें मिलना।'

30. अजातशत्रु

भगवान स्वामिनारायण को कर्ता-हर्ता मानने वाले स्वामीश्री योग्य समय की प्रतीक्षा में थे। अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत तथा शुद्ध उपासना के प्रसार का जो काम उन्होंने आरम्भ किया था। उसीके फलस्वरूप ये सारी कठिनाइयाँ आ रही थीं। इसीलिए वे किसी प्रकार का दुःख नहीं मानते थे। दुःख था तो केवल यही कि भगवान स्वामिनारायण के प्रासादिक तीर्थ

स्थान वड़ताल में ही उनके शुद्ध उपासना सिद्धांत की बात करना अपराध माना जाता था।

वे संवत् 1962 कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा के दिन सुबह चार संतों के साथ हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति के सामने दर्शन के लिए पधारे। गद्‌गदभाव से उनकी प्रार्थना की, 'हे महाराज! हम तो वड़ताल से अलग होना बिल्कुल ही नहीं चाहते; परन्तु यदि आपके सिद्धांत प्रर्वतन के लिए अलग होने की स्थिति आप की इच्छा से ही निर्मित हुई है, तो आप हमेशा हमारी सहायता





कीजिएगा और सदा साथ रहकर सिद्धांत को विश्वभर में प्रसारित करने की सेवा दीजिएगा।'

अब पाँचों संत तथा डेढ़ सौ हरिभक्तों का समुदाय वड़ताल मंदिर के हनुमानवाले दरवाजे से बाहर निकलें। सारे मंदिर और वड़ताल गाँव में एक, भयानक सन्नाटा फैला हुआ था। भले ही द्वेषी लोग खुश हो रहे थे, परन्तु सभी के दिल में प्रतीति हो रही थी की स्वामीश्री के बिदा होने से सारा वड़ताल संस्थान निस्तेज हो गया है।

जब गाँव के पुलिस पटेल किशोरभाई ने यह खबर सुनी तो आनन-फानन में गोमती तालाब के मार्ग पर चले जा रहे स्वामीश्री के पास आ पहुँचे और प्रणाम करते हुए कहने लगे, 'स्वामीजी! आपको मंदिर से निकालने वाले दुर्जन हैं कौन? कौन आप को परेशान कर रहे हैं? नाम दीजिए उन सभी के। मैं अभी उन्हें नडियाद की जेल में बंध करवा दूँ।'

स्वामीश्री ने अत्यन्त शांतभाव से कहा, 'हम ऐसा कुछ भी करना नहीं चाहते। हम तो साधुओं के धर्म के अनुसार सब कुछ सहन करके भी सत्संग करना और सत्संग की अभिवृद्धि करना ही चाहते हैं।'

किशोरभाई तो स्वामीश्री की अजातशत्रुता देखकर चकित रह गए, उन्होंने ने बैलगाड़ी मँगवाकर स्वामीश्री तथा संतों को बोचासण की ओर जाने के लिए सुविधा कर दी। जैसे-जैसे यह खबर फैलती गई, वैसे-वैसे हरिभक्तों का समुदाय पुष्पमालाएँ लेकर स्वामीश्री के पास आने लगा।

स्वामीश्री आगे बढ़े उसी क्षण सामने गाय मिली। स्वामीश्री ने स्मित करके कहा, 'शुकुन अच्छे हो रहे हैं।'

तत्पश्चात् उपस्थित हरिभक्तों को उपदेश देते हुए कहा, 'आप सब आज तक वड़ताल में ठाकुरजी के लिए जो कुछ धर्मार्थ आर्थिक समर्पण करते हैं, मन्दिर में रसोई देते हैं, पूर्णिमा मनाते हैं, वह सब कुछ उसी तरह करते रहना। क्योंकि मन्दिर और ठाकुरजी हमारे हैं। हम उनसे अलग नहीं होते।'

स्वामीश्री वड़ताल से करमसद पधारे और दोपहर के बाद उन्होंने बोचासण जाने का निर्णय किया।

उनके साथ कुल चार साधु थे, सभी वीर और स्वामीश्री के लिए जान भी कुर्बान करनेवाले थे। देहसुख तथा मान-अपमान की उनको तनिक भी परवाह नहीं थी। सभी संतोंने स्वामीश्री तथा श्रीहरि के सिद्धांत के लिए बहुत कष्ट सहन किए। किसी के माथे पर चूल्हे से निकली गरम-गरम राख डाली गई थी, तो किसी की देह में बड़ा सूया भौंक दिया गया था; परन्तु किसी ने किसी से कोई शिकायत नहीं की थी, न तो उनको बेइज्जत करने का सोचा भी था। वे केवल साधुता के मार्ग पर चलकर सबकुछ सहन कर रहे थे। ऐसे धर्मनिष्ठ सन्तों के स्नेहपूर्ण साथ से स्वामीश्री के कार्य को बहुत वेग मिला।

31. शुद्ध उपासना के मन्दिर

सं. 1962 की फाल्गुनी पूर्णिमा का उत्सव उन्होंने आणंद में मनाने का निश्चय किया। गाँव में फैलाया गया विरोधियों का द्वेष शान्त होने का नाम नहीं ले रहा था। पूर्णिमा के इस उत्सव को रोकने के भी बड़े प्रयास किए गए। हरिभक्तों को उलटा ही समझाया गया कि शास्त्रीजी का तनिक भी साथ-सहयोग न दें; परन्तु उनके सभी प्रयास निष्फल हुए।

उत्सव में करीब आठसौ हरिभक्त उपस्थित थे। इस उत्सवसभा में सभी ने मिलकर स्वामीश्री को एक सुंदर मन्दिर बनाने की प्रार्थना की। स्वामीश्री का उस समय एक ही उत्तर था कि 'शायद वड़ताल के साथ हमारा समाधान हो जाए। इसलिए अलग मन्दिर के निर्माण की शीघ्रता करना उचित नहीं है।'

परन्तु हरिभक्तों ने अपना आग्रह जारी रखा और मन्दिर निर्माण के लिए चन्दा लिखना आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते चालीस हज़ार रुपयों का चन्दा हो गया। स्वामीश्री ने उनको रोकते हुए कहा, 'अब चन्दा लिखना बन्द करो, आवश्यकता पड़ने पर देखा जाएगा।'

अब सवाल था मन्दिर के लिए उचित स्थान का। हरिभक्तों ने अपने अपने गाँव में मन्दिर के लिए प्रार्थना की; परन्तु स्वामीश्री ने कहा कि हमने बोचासण के भक्त काशीदास को उनके गाँव में मन्दिर बनाने का वचन दिया था। अतः उनकी इच्छा के अनुसार बोचासण में ही मन्दिर बनाना योग्य है।' सभी ने स्वामीश्री की रुचि में अपनी रुचि मिला और देखते ही देखते बोचासण में मन्दिर के लिए भूमि खरीद ली गई।

जगद्‌गुरु शंकराचार्य माधवतीर्थ को मालूम हुआ कि शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी जैसे सुयोग्य विद्वान आणंद शहर में बिराजमान हैं। यदि उनको मैं अपने पक्ष में मिला दूँ, तो वड़तालवालों को शास्त्रार्थ में आसानी से पराजित किया जा सकता है। उन्होंने इसी उद्देश्य से स्वामीश्री से मिलने की इच्छा व्यक्त की। स्वामीश्री ने उनका आशय समझकर उनको अपना अभिप्राय भेज दिया कि 'हम वड़ताल से अलग नहीं हैं । हम दोनों एक ही हैं।'

माधवतीर्थजी का आशय यद्यपि सिद्ध नहीं हुआ, परन्तु उनके हृदय में स्वामीश्री की अजातशत्रुता देखकर अत्यन्त आदर भाव पैदा हुआ। उन्होंने

कहा, 'सारे सम्प्रदाय में विद्वत्ता और साधुता में शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी एक और अद्वितीय सन्त हैं।'

32. परिवर्तन

बोचासण में भगवान स्वामिनारायण के समकालीन भक्त काशीदास रहते थे। उनके वंशज हीराभाई पटेल अत्यन्त बदनाम आदमी थे। अपने भयंकर करतूतों के कारण सारा चरोतर प्रदेश (खेड़ा जिला) उनके नाम से काँपता रहता था। चोरी, लूट, खून आदि पापकर्म करने में उनका नाम हमेशा पुलिस रिकार्ड में दर्ज रहता था। परन्तु उनके विरुद्ध शिकायत करने की हिम्मत किसी में नहीं थी। यदि कोई ऐसा करने की जुर्रत करता, तो उसकी जान खतरे में पड़ जाती तथा जीना भी दूभर हो जाता। अंग्रेज पुलिस भी उनका कुछ बिगाड़ड नहीं सकी थी।

वे अपने काका गिरधरभाई की सूचना से स्वामीश्री की सेवा के लिए तैयार हुए। उन्होंने संतों के लिए रसोई का खर्च दिया। स्वामीश्री ने सभी सन्तों को भोजन करवाया, परन्तु वे स्वयं भोजन के लिए नहीं बैठे। जब इस बात की जानकारी हीराभाई को दी गई, वे स्वामीश्री के पास आग्रह करने के लिए चले आए। परन्तु स्वामीश्री स्पष्टरूप से कहा, 'आप के वर्तन में कोई सदाचार नहीं देखता हूँ। इसीलिए आपका भोजन करना मेरे लिए वर्ज्य है। यदि आज आप अपने पूर्वज भक्तराज काशीदासजी की तरह वर्तमान धारण करते शुद्ध वर्तन की प्रतिज्ञा करेंगे, तभी मैं आपकी सेवा स्वीकार कर सकता हूँ।'

स्वामीश्री की आँखों से प्रकाशित हो रही दिव्य किरणों ने हिराभाई के अंतर को भी प्रकाशित कर दिया। केवल चन्द मिनटों के वार्तालापो में इस खूखांर आदमी ने अपने हथियार स्वामीश्री के चरणों में डाल दिए। अब उन्होंने सारे पापकर्म छोड़कर स्वामीश्री से वर्तमान धारण करवाया और सत्संगी बन गए।

ऐसे दिव्य प्रभाव के कारण सारे जिले में स्वामीश्री के नाम के डंके बजने लगे। लोग कहने लगे कि हीराभाई जैसे उद्दंड व्यक्ति को भी सत्संगी बनानेवाले ये साधु वास्तव में कोई महान विभूति हैं।

वड़ताल में गोवर्धनभाई कोठारी को जब यह खबर मिली तो उन्होंने

कहा, 'इस अवसर पर यदि भगवत्प्रसादजी महाराज उपस्थित होते तो, हीराभाई को सत्संगी बनानेवाले शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी का भारी सम्मान करते और श्रीहरि के चरणाविंदों की छाप देकर अत्यन्त प्रसन्न होते। जब कि वड़ताल संस्थान के आज के अधिकारी लोग तो उनको मिटाने की सोच रहे हैं।'

33. गुणातीत का गौरव

हीराभाई के समान शिष्य होने के कारण अब से शास्त्रीजी का नाम ही लिया जाएगा, ऐसा सोचकर विरोधीवर्ग ईर्ष्या के कारण जल रहे थे। एक दिन वे तीन हथियारबन्द पार्षदों को ऊँट पर बिठाकर स्वामीश्री की हत्या के लिए बोचासण भेज दिए। परन्तु स्वामीश्री उसी दिन बोचासण से अन्यत्र जाने के लिए निकल चुके थे। वड़तालवालों की ऐसी हरक़तों को देखकर हीराभाई उन्हें नसीहत देने की सोचने लगे। ताकि फिर से वे स्वामीश्री से भिड़ने का साहस न करें। हीराभाई ने पार्षदों को रोककर भारी नसीहत दी। उनके ऊँटों के पैरों पर जोर से एक-एक डण्डा जमाया, ऊँट दूर तक पार्षदों को लेकर भाग निकले।

द्वेषी लोग अपने विफल प्रयास के कारण और भी बिफर गए। उन्होंने एक सप्ताह के भीतर पूरी तैयारी के साथ साधी गाँव में हमला बोलने का निश्चय कर लिया। स्वामीश्री साधी गाँव में थे, उस समय आचार्य लक्ष्मीप्रसादजी वहाँ से दो कोस दूर रणु गाँव में आए थे। उसी दिन सुबह होते ही स्वामीश्री ने अचानक आशाभाई से कहा, 'मैं पादरा जा रहा हूँ, इसी समय इक्का जोतकर लाओ।'

आशाभाई ने स्वामीश्री को भोजन के बाद जाने के लिए अत्यन्त आग्रह किया। परन्तु स्वामीश्री ने कहा, 'मेरे बदले में संतों को भोजन देना, मैं तो पादरा जाकर ही भोजन लूँगा।'

वे पादरा न जाकर सेजाकूआ गाँव पहुँच गए। उस ओर हथियारबंद पार्षद साधी गाँव पहुँचे तो मालूम हुआ कि स्वामीश्री तो वहाँ से निकल चुके थे। परन्तु उनके बदइरादे को भाँपकर गाँव के मुखिया महीजीदादा भड़क उठे। उन्होंने पार्षदों को गालियाँ और धमकी देकर भारी नसीहत दी

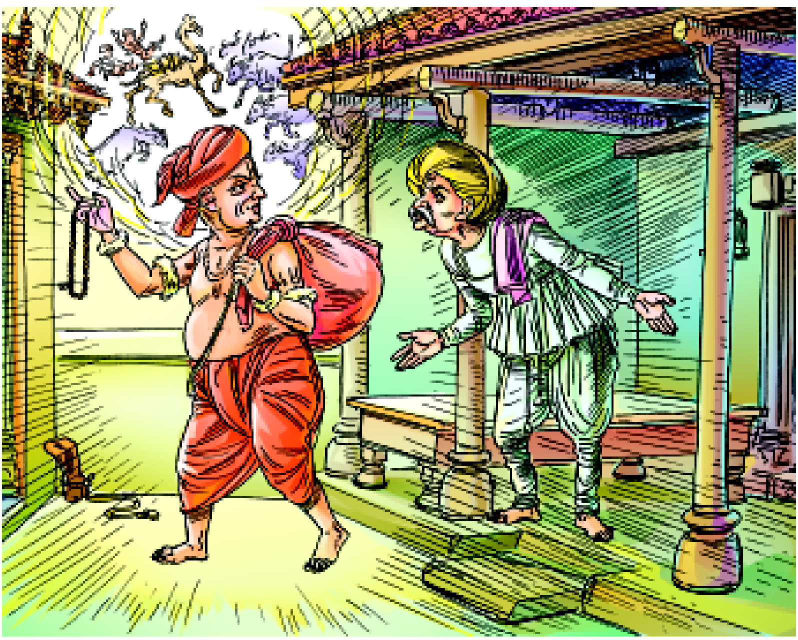
इतने में तो किसीने गाँव की सीमा पर जाकर बँधे हुए ऊँटों को खोल दिया और मारकर भगा दिए। मन्दिर के कोठारी ने पार्षदों को कह दिया कि शास्त्रीजी तो पादरा गए हैं।' अतः वे तुरन्त पादरा की ओर निकल पड़े।

सारे हरिभक्त यह सुनकर चिन्तित हुए कि अब पादरा में स्वामीश्री का क्या होगा! परन्तु स्वामीश्री बिलकुल निश्चित थे क्योंकि उनकी चिंता स्वयं श्रीहरि और गुणातीतानन्द स्वामी किया करते थे।

इस बात की प्रतीति तब हुई जब बिल्कुल उसी समय सौराष्ट्र में मोटा गोखरवाला गाँव में अरजणभाई नामक हरिभक्त को गुणातीतानन्द स्वामी ने दिव्यरूप में दर्शन दिए। स्वामी ने धोती का कच्छा लगाया था, सिर पर पगड़ी नहीं थी और पैरों में जूते भी नहीं थे। अरजणभाई ने उठकर स्वामी को दण्डवत् प्रणाम किया और अपने घर में पधारने की बिनती की।

स्वामी ने कहा, 'इस वक़्त तो मैं नहीं ठहर सकता, क्योंकि गुजरात में मेरे भक्त के सिर पर संकट आ पड़ा है। उनकी रक्षा के लिए मुझे वहाँ जल्दी पहुँचना आवश्यक है। इतना कहकर स्वामी अदृश्य हो गए।

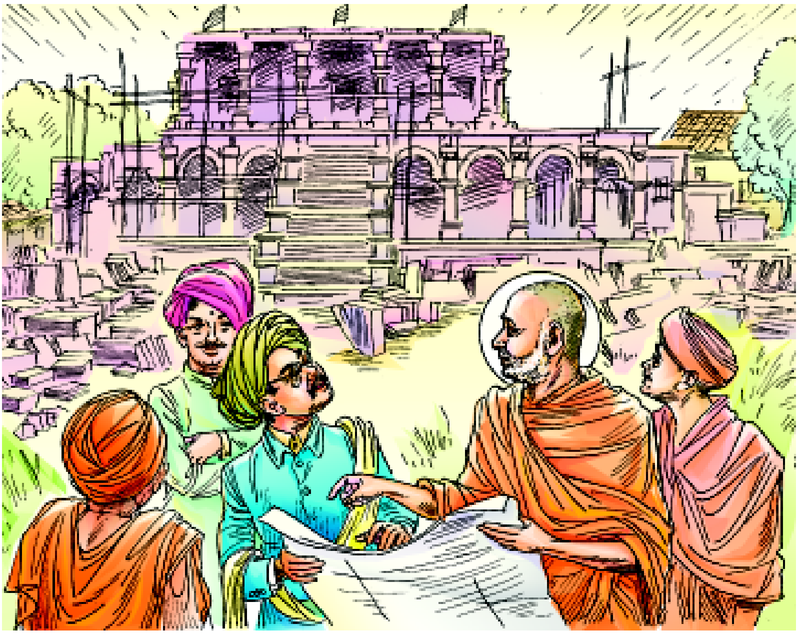
पादरा में भी स्वामीश्री को न पाकर पार्षद निराश हो गए, वे भूखे-



प्यासे फिर साधी की ओर रवाना हो गए। गाँव के निकट पहुँचते ही सामने आ रही भैंस ऊँटों को देखकर भड़क उठी। कुछ भैंसें ऊँटों के साथ टकराईं, ऊँट भी धबराहट के कारण भागने लगे। हुपर बैठे हुए पार्षद बुरी तरह जमीन पर गिर गए। चोट के कारण कराहते हुए रोने लगे। अन्त में गाँव से एक बैलगाड़ी किराये पर लेकर सब रणु पहुँचे। इस तरह श्रीजीमहाराज तथा गुणातीतानंद स्वामीने स्वामीश्री की रक्षा की।

34. बोचासण में प्रथम अक्षरपुरुषोत्तम मन्दिर

इतने विरोधों का बवण्डर उठा था, फिर भी बोचासण में निश्चित दिवस पर भव्य मंदिर का खातमुहूर्त निर्विघ्नता पूर्वक संपन्न हुआ। नींव खोदने का काम आरंभ हो गया। स्वामीश्री स्वयं इस सेवाकार्य में जुट गए। सन्तों और हरिभक्तों का उत्साह तो मानो परवान चढ़ा था। सभी हरिभक्तों ने मन्दिर की सेवा के लिए करीब छः महीने तक अपनी खेतीवाड़ी का काम रोक दिया था और अपने बैल, गाड़ी तथा अन्य साधन मन्दिर के निर्माण कार्य में लगा दिए थे।



एक दिन अचानक नींव खोदते-खोदते धरती से धन के चरु निकल पड़े। हरिभक्तों ने भारी उत्साह के साथ स्वामीश्री को यह खबर पहुँचाया। परन्तु उन्होंने बड़ी निःस्पृहता से कहा, 'भाइयों, हमें ऐसी लक्ष्मी नहीं चाहिए। धन के कुंभ उसी जगह गाड़ दो, जहाँ से वे निकले थे। इस मंदिर में तो लक्ष्मीजी की प्रतिष्ठा करेंगे, अतः सारे ब्रह्माण्ड की लक्ष्मी यहाँ आकृष्ट होकर चली आएगी।'

स्वामीश्री ने सभी कुम्भ वहीं गड़वा दिए। शरण में आई हुई सिद्धि को उन्होंने वापस लौटा दी। वे मन्दिर निर्माण का काम श्रीजी तथा उनके भक्तों की सेवा के आधार पर ही करते रहे।

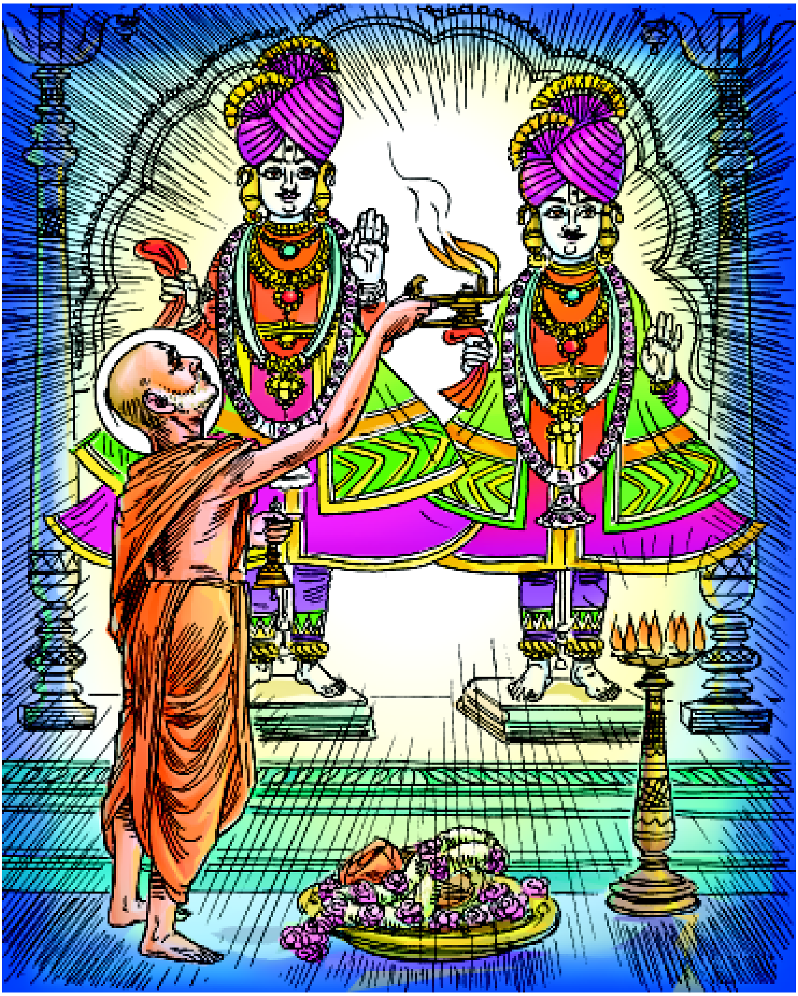
विरोधियों ने इस काम को बिगाड़ने के लिए हीराभाई को पाँच हज़ार रुपयों की रिश्वत देने की योजना बनाई। उनको मालूम नहीं था कि हीराभाई अब बिकने वाले नहीं रहे थे। हीराभाई ने उन विरोधियों को स्पष्ट सुना दिया कि 'देखिए, मेरे गाँव में मन्दिर बनता है, तो इसमें मेरी ही शोभा बढ़ती है, स्वामीश्री ने तो मुझे जीवनदान दिया है, मुझे पशुवत् जीवन से निकाल कर मनुष्य बनाया है, वे मेरे गुरुदेव हैं। आप जो भी रुपये देंगे स्वामीश्री की आज्ञा के अनुसार उनको मंदिर निर्माण में खर्च किए जाएँगे, यदि आपको मेरी बात मंजूर हो तो दें, नहीं तो रास्ता पकड़ लें। अब मैं गुरुकृपा से बदल गया हूँ। स्वामीश्री के विरुद्ध रिश्वत लेनेवाला गुरुद्रोही नहीं रहा।'

यह सुनकर सभी स्तब्ध रह गए। हीराभाई ने एक-एक के चेहरे को अपने हृदय में स्थापित कर लिया था। चेतावनी देते हुए कहा, 'अब मैं देखूँगा कि कौन मेरे गुरु के काम को बिगाड़ने का सपना देख रहा है। यदि इस काम में कोई भी विघ्न आ पड़ा तो मैं समझूँगा कि वहाँ तुम्हारा ही कारनामा है। फिर देखना एक-एक को ऐसी सजा मिलेगी कि तुम्हारे पुरखों की रुह तक काँप उठेगी। यदि हिम्मत हो तो प्रतिष्ठा के दिन विघ्न डालने के लिए आ जाना। मेरे दो हज़ार स्वयंसेवक तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार रहेंगे। ' हीराभाई का आह्वान सुनकर विरोधियों की तो घिग्घी बंद गई।

सं. 1963 वैशाख शुक्ल 10 दशमी का मूर्तिप्रतिष्ठा दिवस नज़दीक आ रहा था, वैसे सभीका उत्साह समुद्र में उठे ज्वार की भाँति उमड़ रहा था। सारे ब्रह्माण्ड में स्वामीश्री के समान परम एकान्तिक सन्त के करकमलों द्वारा

अक्षर और पुरुषोत्तम महाराज की मूर्तियों की प्रतिष्ठा होनेवाली थी, उत्सव की तैयारियाँ जोरशोर से चल रही थीं। हीराभाई ने सुरक्षा के लिए अपने 'धाराला' जाति के 2000 वीर स्वयंसेवकों को चारों ओर खड़े कर दिए थे।

यज्ञविधि के बाद भगवान स्वामिनारायण की मूर्ति को मध्य मंदिर में स्थापित कर दी गई। उसके बाद सभी लोग गुणातीतानन्द स्वामी की मूर्ति उठाने का प्रयास करने लगे, तो वह हिली तक नहीं! वास्तव में स्वामी की मूर्ति तो श्रीहरि की मूर्ति से वजन में काफी हल्की थी। अतः मूर्ति उठाने के



लिए यज्ञशाला में उपस्थित स्वयंसेवक मन ही मन सोचने लगे कि स्वामी की मूर्ति हल्की होने के बावजूद हम क्यों नहीं उठा सकते? क्या स्वामी हमारी परीक्षा तो नहीं ले रहे?

उन्होंने इस बात की खबर स्वामीश्री को दी। वे तुरन्त यज्ञशाला में आ पहुँचे। स्वामी की मूर्ति के सामने घुटनों के बल बैठकर प्रार्थना करने लगे कि 'हे स्वामी! आपके लिए ही हमने वड़ताल संस्थान को छोड़ा है। आप ही के लिए हमने अपमान, तिरस्कार और मारपीट सहन किया है। अब आप ही श्रीहरि के साथ बिराजमान नहीं होंगे, तो हम, लोगों के सामने क्या मुँह दिखाएँगे? अतः आप श्रीहरि के साथ मन्दिर में बिराजमान होने की कृपा करें।'

प्रार्थना के बाद स्वामीश्री ने मूर्ति के नीचे गहदाला रखा और जरा-सा जोर किया कि मूर्ति उठने लगी। हरिभक्तों ने मिलकर श्रीजीमहाराज की प्रतिमा के बिल्कुल पास ही मध्य मंदिर में स्वामी की स्थापना कर दी। दूसरे दिन स्वामीश्री के करकमलों से दोनों मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार सर्वत्र अक्षरपुरुषोत्तम का जय-जयकार होने लगा।

आज काशीदासजी को श्रीहरि के द्वारा दिया गया वचन स्वामीश्री द्वारा पूर्ण हुआ तथा संसार में अक्षर और पुरुषोत्तम की शुद्ध उपासना की सिद्धांत गंगा प्रवाहित होने लगी।

35. शेषनाग के माथे पर खूँटा

बोचासण में मंदिर का निर्माण कार्य तो हो चुका था। परंतु भव्य द्वार के लिए अर्थात् गोपुरम् का निर्माण करने में विशेष भूमि की आवश्यकता थी। परंतु भूमि संपादन इसीलिए नहीं हो रहा था कि वह गाँव के लोगों का आम रास्ता था। गाँववाले इसी कारण भूमि देने के लिए तैयार नहीं थे। परंतु किसी तरह भूमि प्राप्त करना अनिवार्य था। ग्रामजनों ने स्वामीश्री के विरोध में बेचर कीसा नामक एक उद्दंड आदमी को खड़ा कर दिया। वह तो स्वामीश्री के पास पहुँचते ही अनाप-शनाप बकने लगा ।

स्वामीश्री ने अत्यंत धैर्यपूर्वक कहा, 'देखिए, बेचरभाई, हम आपके गाँव की शोभा ही नहीं बढ़ा रहे हैं। अब तक आप सभी ने मिलकर हमें

इतना सहयोग दिया है, तो कुछ और भूमि देने में क्यों कतराते हो। क्या आप नहीं चाहते कि इस भव्य मंदिर का द्वार भी इतना ही भव्य हो?'

इतना कहते ही स्वामीश्री ने उसकी ओर तीव्र दृष्टिपात किया। बेचर कीसा का अन्तःकरण उसी पल बदल गया। वह कहने लगा, 'ठीक है, ठीक है, लाइए, कितनी ज़मीन चाहिए आपको? अभी-अभी नाप दूँ, फिर आगे चलकर और ज़मीन मत नापना।'

स्वामीश्री ने स्मित करते हुए एक लाठी उसके हाथ में थमा दी और कहा, 'नाप दो इससे।' बेचरभाई ने चार डण्डा ज़मीन नापी, यह देखकर स्वामीश्री ने कहा, 'अब हमारी ओर से दो डण्डा ज़मीन और नापो।' उसने ऐसा ही किया।

स्वामीश्री ने तुरंत चारों ओर नाप लेकर उस स्थान पर खूँटे गाड़ने का आदेश दे दिया। स्वामीश्री का ऐसा अनन्य प्रताप देखकर सरकारी खातेदार धनजी का मन कड़वाहट से भर गया।

उसने गाड़े हुए खूँटे उखाड़ने के लिए कदम आगे बढ़ाया। जब वह खूँटा निकालने जा रहा था, स्वामीश्री ने शांत वाणी में परंतु दृढ़तापूर्वक कहा, 'खातेदारजी, छूना मत। ये खूँटे ज़मीन में नहीं, शेष नाग के सिर पर जड़े हुए हैं, अब ये नहीं निकल सकते। इसलिए उसे निकालने का प्रयास न कीजिएगा।' परंतु धनजी ने स्वामीश्री की एक न सुनी। जैसे ही उसने जोर लगाकर खूँटा खींचा कि खूँटे की नोक रक्त से सनी हुई देखी। उसके सिर से माथे तक सिहरन दौड़ गई।

हाथ से खूँटा छूट गया और उसका बदन थर-थर काँपने लगा। उसने स्वामीश्री के चरणों में गिरकर बार-बार क्षमा याचना की। उस दिन से लेकर उसने मन्दिर के प्रत्येक कार्य में मनोयोग से सहयोग दिया।

अक्षरपुरुषोत्तम उपासना के विषय में थोड़ी-सी भी रुचि रखनेवाले हज़ारों मुमुक्षुओं का प्रवाह सारे गुजरात से बोचासण की ओर प्रवाहित होने लगा। विरोध के डर से जो ज्ञान वड़ताल मंदिर की चहार दीवारी में बंद था, अब सारे गुजरात में बेरोकटोक फैलने लगा। लोग निर्भय होकर अक्षरपुरुषोत्तम महाराज का जयघोष करने लगे तथा उनकी महिमा गाने लगे।

जूनागढ़ के समर्थ सद्गुरु स्वामी बालमुकुन्ददासजी ने वड़ताल में कहा

था, 'अक्षर और पुरुषोत्तम की मूर्ति-प्रतिष्ठा करके शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी ने सारे सम्प्रदाय में उपासना की शुद्धि की है, आज तक लोग भिन्न-भिन्न देवों और अवतारों की ही उपासना करते थे, अब भगवान स्वामिनारायण अपने उत्तम भक्त अक्षरब्रह्म के साथ बिराजमान हुए हैं, तो अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना करने का मार्ग अब निर्विघ्न बन गया है।'

राजकोट के महान भक्तराज कृष्णजी अदा कहते थे कि 'यदि आपको विशुद्ध ज्ञान का प्रचार खुले आम देखना हो तो बोचासण जाइए। शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी ने प्रचंड पुरुषार्थ करके सम्प्रदाय की महान सेवा की है।'

36. सारंगपुर की शोभा

भगवान स्वामिनारायण के प्रासादिक स्थान सारंगपुर में मंदिर निर्माण करने का स्वामीश्री का दूसरा लक्ष्य था। क्योंकि बोचासण के मन्दिर की खबर गढ़डा के कोठारी भीमजीभाई को मिली तो द्वेष उगलते हुए उन्होंने वड़ताल के कोठारी गोवर्धनभाई को लिख भेजा कि 'गुजरात में आप जैसे कमज़ोर बनियों के देखते ही देखते यज्ञपुरुषदास ने बोचासण में अपनी मन मानी भले ही कर ली, परंतु यदि साबरमती के इस पार - सौराष्ट्र में उन्होंने मन्दिर बनाने की चेष्टा की, तो उनको बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा।' परंतु भीमजीभाई समझ नहीं पा रहे थे कि अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की प्रतिष्ठा करने के महान कार्य में स्वयं भगवान स्वामिनारायण ही स्वामीश्री को निमित्त बना रहे थे।

उनके द्वारा स्वयं श्रीजीमहाराज मंदिर निर्माण कर रहे थे। स्वामीश्री ने जब भीमजीभाई की ललकार सुनी, तो वे मुस्कुराने लगे। उन्होंने कहा, 'मंदिर के लिए स्थान को चुननेवाले हम कौन? यदि महाराज की इच्छा होगी तो भीमजीभाई का संकल्प पूरा हो जाएगा।'

एकबार वे दर्शन के लिए सारंगपुर पधारे। स्थानीय हरिभक्त स्वामीश्री के साथ अनन्य भाव से जुड़े हुए थे। एक दिन स्वामीश्री श्रीहरि के प्रासादिक कुण्ड पर स्नान के लिए जा रहे थे, मार्ग में एक स्थान पर रुक गए और आणंद के भक्तराज मोतीभाई को संबोधित करते हुए कहा, 'मोतीभाई! स्वयं श्रीजीमहाराज ने इस स्थान पर मन्दिर निर्माण का संकल्प

किया है तथा उन्होंने स्वयं इस गाँव के ठाकुर जीवाखाचर को मन्दिर निर्माण का वचन भी दिया था। इसीलिए यहाँ अवश्य मन्दिर बनेगा।'

जब वे स्नान करके लौटे तब पुनः एकबार वे मोतीभाई से कहने लगे, 'हमें सारंगपुर में मन्दिर का निर्माण अवश्य करना है, आप मंदिर की भव्यता की कल्पना करके भजन की रचना करें।'

मोतीभाई आज्ञा सुनकर गहरी सोच में उतर गए, 'अभी तो बोचासण का मन्दिर में भी अधूरे काम पूरे हो रहे हैं। कोठार में फूटी कौड़ी की भी व्यवस्था नहीं है। संतों-भक्तों को कभी-कभी खाने के भी लाले पड़ रहे हैं और स्वामीश्री यह कैसा संकल्प कर रहे हैं?'

व्याकुल होकर उन्होंने स्वामीश्री की ओर देखा, स्वामीश्री ने स्मित करके उस स्थान की ओर अँगुली-निर्देश किया। उसी पल मोतीभाई की आँखों के सामने एक अद्‌भुत दृश्य उभरने लगा। सुवर्णकलशों से युक्त तीन शिखरों का एक भव्य मन्दिर, जिसमें भव्य सिंहासनों के बीच धाम, धामी और मुक्त की प्रतिमाएँ बिराजमान थीं। वे ऐसा चमत्कार देखकर चकित रह गए। उनके मुँह से अपने आप भजन की पंक्तियों का प्रवाह बह निकला।

श्री सारंगपुर की शोभा बनी अति प्यारी ।
देखी अलौकिक अद्‌भुत धाम अविकारी ॥

उनकी शंका का समाधान हो गया। वे इस बात को अच्छी तरह समझ गए थे कि स्वामीश्री तो ऐसे अनेक मन्दिर बनाने की अनन्य क्षमता रखते हैं।

37. गंगा-सागर का संगम

कृष्णजी अदा के निमंत्रण पर स्वामीश्री सारंगपुर से राजकोट पधारे। यहाँ जूनागढ़ के महान सद्‌गुरु स्वामी कृष्णचरणदासजी अपने संत मंडल के साथ राजकोट पधारे थे। क्योंकि संतमंडल में छोटे-से पार्षद झीणा भक्त का संकल्प था कि बोचासण में मंदिर बनवानेवाले साधु यज्ञपुरुषदासजी कैसे होंगे? अदाश्री ने उसी कारण स्वामीश्री को राजकोट निमंत्रित किया था। स्वामी कृष्णचरणदासजी, गुणातीतानन्द स्वामी के कृपापात्र शिष्य थे। उनकी मण्डली के साधु, साधुतागुण से परिपूर्ण थे। उन सभी में झीणा भगत तो सबसे निराले थे। उन्होंने स्वामीश्री के कार्यों के विषय में अदाश्री तथा अन्य

संतों के द्वारा बहुत कुछ सुना था। ऐसे अलौकिक सन्त के दर्शन करने की उनकी तीव्र अभिलाषा थी।

आज वे स्वामीश्री के प्रथम दर्शन से ही अत्यंत प्रसन्न हुए। उनके हृदय में स्वामीश्री के प्रति अपार आकर्षण हुआ। उनकी आत्मा को आज परम सन्तोष की अनुभूति हो रही थी।

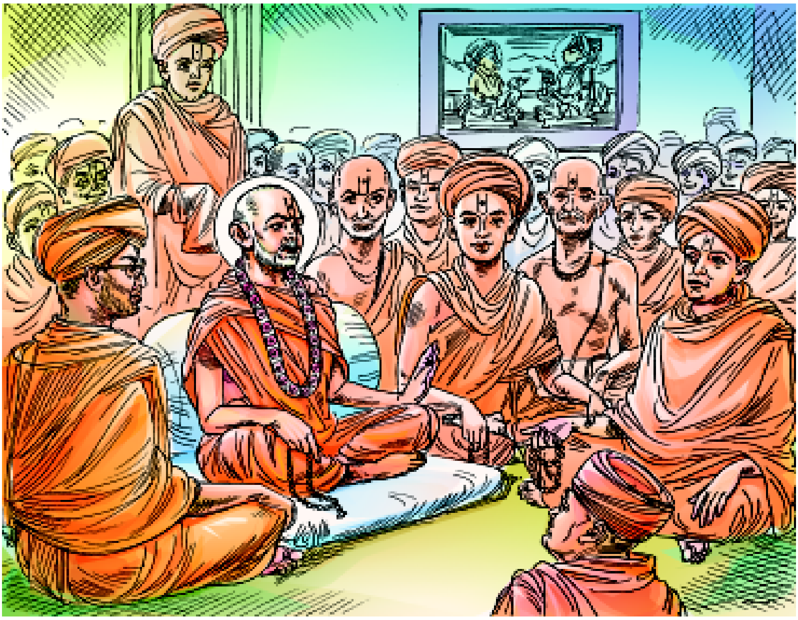
स्वामीश्री पुनः सारंगपुर पधारे। उन्होंने हरिभक्तों की प्रार्थना सुनकर केवल पीठा खाचर के घर को खरीद लिया और मन्दिर-निर्माण की प्रवृत्ति करने लगे। शास्त्रीजी ने सारंगपुर में पीठा खाचर के चार कमरे खरीद लिए, यह सुनते ही भीमजी कोठारी चौंक उठे! फिर भी वे कहने लगे, 'अरे! कमरे खरीद लिए तो क्या किया? इतने में मन्दिर थोड़े ही बन जाएगा?' परंतु स्वामीश्री बिना किसी की सुने, लगातार पुरुषार्थ करते रहे। अब वे सारंगपुर के आसपास के छोटे-छोटे गाँवों में तथा झालावाड़ में घूमकर सर्वत्र अक्षरपुरुषोत्तम की अपार महिमा सुनाते रहते थे।

लीमडी स्टेट के दीवान झवेरभाई, स्वामीश्री की सेवा में हमेशा तत्पर रहते। उन्होंने पीठा खाचर की कमरे के बात सुनकर फौरन स्वामीश्री का संपर्क किया, 'स्वामीजी! आप यदि सारंगपुर में मन्दिर बनाना चाहते हैं, तो मैं ठाकुर साहब से कहकर भूमि दिलवा सकता हूँ।' स्वामीश्री ने कहा, 'अब तो हमारे पास आर्थिक सुविधा नहीं है, उपरांत बोचासण का काम भी अभी अधूरा पड़ा है, फिर भी आप यदि भूमि दिलवा सकते हैं, तो हम एक छोटा-सा मन्दिर बना देंगे।'

परंतु दीवान साहब जानते थे कि कम भूमि मिलने से स्वामीश्री का मन नहीं मानेगा। उन्होंने कहा, 'स्वामीजी! आप चाहें, तो बहुत-सी जमीन मिल सकती हैं, आप बड़ी ज़मीन क्यों नहीं माँग लेते?'

स्वामीश्री ने चौबीस एकड़ भूमि की याचिका उनके सामने रख दी। दीवान साहब ने लीमडी के ठाकुर साहब से मिल कर तुरंत दिलवा दी तथा बाक़ी ज़मीन के मालिक धोलका गाँव के शिरमियाँ थे, उनसे खरीदी।

इतनी विशाल ज़मीन पर मन्दिर निर्माण का काम आसान तो नहीं था। क्योंकि आर्थिक अभावों के साथ-साथ न तो उनके पास इतना मानव समुदाय था तथा न ही तो खाने-खिलाने के लिए पर्याप्त सामग्री भी थी।



उपरांत चारों ओर विरोध का वातावरण छाया रहता था। विरोधी लोग कहते फिरते थे कि 'शास्त्री और उनके संत बागी लोग हैं, यदि वे आपके पास वापस आए, तो न खाने के लिए देना, न निवास का प्रबंध करना। मंदिर में आते ही उन्हें धक्कें लगाकर निकाल देना। क्योंकि इन लोगों ने आचार्य और वड़ताल मन्दिर के विरुद्ध विद्रोह किया है, इनको किसी प्रकार का साथ-सहयोग मत देना।' अज्ञानी लोग इस प्रचार से प्रभावित हो जाते थे, परंतु कुछ निडर, शूरवीर और निष्ठावान भक्तों को ऐसे अपप्रचार से कोई फर्क नहीं पड़ता था, वे तो प्राणों की बाजी लगाकर भी स्वामीश्री का पक्ष रखकर सेवाकार्य में जुड़ जाते थे।

स्वामीश्री के साथी सन्त भी उतनी ही निष्ठा से सेवा कर रहे थे। कितने भी कष्ट उनको विचलित नहीं करते थे। अपमान एवं तिरस्कार होने पर भी वे हमेशा प्रसन्न रहते और साधन सामग्री के अभावों में किरासन के धुले हुए डिब्बों में खिचड़ी बनाकर अपना गुजारा कर लेते। कभी-कभी उनको खट्टी छाछ भी नसीब नहीं होती थी। पाँच-छह कोस दूर के गाँवों में पैदल चलकर भिक्षा के लिए जाते, और संत, पार्षद तथा मजदूरों को

खिलाते। एक एक पैसा उनके लिए स्वर्णमुद्रा से भी अधिक था। ऐसे साधुता की मूर्तिरूप संतों का उत्साह तोड़ने के लिए विरोधी लोग हमेशा उनके साथ मारपीट की ही भाषा उपयोग में लेते और कहते कि ये लोग मन्दिर क्या खाक बनाएँगे? अरे यहाँ तो ठाकुर द्वारा होगा। यह सुनकर भी स्वामीश्री के संत कभी नाराज़ नहीं होते, न कभी गुस्सा करते, और आनन्द के साथ अपनी सेवा में जुड़े रहते।

दिन-रात देह की परवाह किए बिना वे मन्दिर की सेवा में परिश्रम करते रहते। उन्हें न तो भोजन की चिन्ता थी न अपनी बिमारियों की। अक्षरपुरुषोत्तम के प्रति अत्यन्त निष्ठा और स्वामीश्री के प्रति अपार स्नेह के कारण ये संत हमेशा प्रसन्न रहकर अपना कर्तव्य निभा रहे थे।

इन दिनों जूनागढ़ के स्वामी कृष्णचरणदासजी की मण्डली के तपस्वी और पूर्ण वितरागी सन्त स्वामी ज्ञानजीवनदासजी तथा अन्य साधु कृष्णजी अदा की प्रेरणा से वड़ताल संस्थान के जूनागढ़ मंदिर को छोड़ दिया तथा पूर्ण सर्मपण के साथ बोचासण आकर स्वामीश्री के साथ मिल गए। वड़ताल के संस्थान के लिए साधुओं का स्वामीश्री के साथ मिल जाना भी एक बड़ा आघात था। स्वामी ज्ञानजीवनदासजी ने मन्दिर के भण्डार से अपनी अत्यन्त प्रिय हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति अपने साथ ले ली थी। जिसकी सेवा स्वयं अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी ने की थी।

जूनागढ़ से राजकोट आकर वे अदाश्री को मिले। स्वामीश्री भी इस संत मंडल के स्वागत के लिए राजकोट पधारे। उनके दर्शन से सभी सन्तों को को अपार शान्ति की अनुभूति हुई। स्वामीश्री के साथ सभी जूनागढ़ी संत सारंगपुर पधारे।

38. स्वामीश्री की महत्ता

शास्त्रीजी महाराज के साथ स्नेह भाव रखनेवाले अनेक हरिभक्त ऐसे थे, जो स्वामीश्री के वड़ताल में रहते समय उनके मित्र हो गये थे। परन्तु बोचासण संस्था की स्थापना के बाद वे स्वामीश्री को मूल संप्रदाय के विरोधी समझकर दूर रहते थे। उनके इस अज्ञान को मिटाने का एक भी मौका स्वामीश्री निरर्थक नहीं जाने देते। ऐसा एक अवसर उनको नडियाद में

मिला। यहाँ, गुजराती एवं संस्कृत साहित्य के विद्वान तथा वड़ताल संस्थान के कमेटी मेम्बर दोलतरामभाई को खबर मिली की स्वामीश्री नडियाद में पारायण पर्व का आयोजन कर रहे हैं। इस अवसर पर उन्होंने स्वामीश्री का ज्ञान लाभ प्राप्त किया। बातों में सच्चाई तथा आचरण में निर्मलता देखकर उन्होंने स्वामीश्री के साथ चर्चा आरंभ की।

परन्तु स्वामीश्री कहने लगे कि इतने कम समय में आपको वचनामृत के रहस्यों को समझना कठिन है। तब उन्होंने स्वामीश्री को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। वे अक्षरपुरुषोत्तम की उपासना का प्रसार के स्वामीश्री के उद्देश्य से भली–भाँति परिचित थे। उनके मन में स्वामीश्री के प्रति इतना विश्वास तो अवश्य था कि स्वामीश्री जो भी करते होंगे, शास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार ही होगा,

आज दस वर्षों के बाद उनको स्वामीश्री के साथ बैठकर अक्षरपुरुषोत्तम तत्व दर्शन को समझने का अवसर मिला। उन्होंने पूछा कि 'स्वामीजी! आप वड़ताल संस्थान के साथ समाधान चाहते हैं?'

स्वामीश्री ने तुरन्त कहा, 'हम समाधान के लिए बिलकुल तैयार ही है। यदि वे लोग गढ़डा मध्य प्रकरण का 21 वे वचनामृत को स्वीकार करें।'

'उस वचनामृत में ऐसा क्या लिखा है कि उसको स्वीकार करवाने का आप आग्रह कर रहे हैं?' यह सुनकर स्वामीश्री ने अनेक वचनामृतों के संदर्भ के साथ भक्त तथा भगवान की महिमा का सिद्धांत समझाया और कहा कि जब हम प्रत्यक्ष भगवान और प्रत्यक्ष सन्त के विषय में निश्चय कर लेते हैं, तभी हम कल्याण के विषय को हस्तगत कर सकते हैं।

स्वामीश्री ने उनको लगातार आठ घंटों तक ज्ञानलाभ दिया। ऐसी अद्‌भुत एवं असरकारक निरूपणशक्ति देखकर दौलतरामभाई खुशी के मौरे नाच उठे।

गुणातीतानन्द स्वामी अक्षरब्रह्म हैं तथा अक्षरब्रह्म के साथ एकात्मभाव से जुडकर पुरुषोत्तम की भक्ति का अधिकार का पा सकते हैं। इस रहस्य के साथ आज उनके मन में यह प्रतीति होने लगी कि आज शास्त्रीजी महाराज के द्वारा पुरुषोत्तम नारायण प्रकट हैं, क्योंकि स्वामीश्री स्वयं ब्रह्म का स्वरूप हैं। तुरन्त वे गोष्ठी के बाद बोल उठे, 'स्वामीजी! जिस कार्य को पूरा करने

के लिए श्रीजीमहाराज को स्वयं इस धरती पर पुनः अवतार लेना पड़ता, वह कार्य आपने संम्पन्न किया है। आपकी महत्ता अपार है। आज तो आपने श्रीजीमहाराज और स्वामी की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की हैं, भविष्य में आपके शिष्य आपकी स्वर्णमयी मूर्ति की प्रतिष्ठा करेंगे, इतनी आपकी महत्ता इस कार्य से बढ़ जाएगी।'

उनके वचन सुनकर सभीको स्वामीश्री की अपार महत्ता का दर्शन हुआ।

वड़ोदरा में मन्दिर में प्रतिष्ठित होने वाली मूर्तियाँ तैयार हो रहीं थी। एक बार स्वामीश्री उन्हें देखने के लिए वड़ोदरा पधारे थे। स्थानीय हरिभक्त उनको आग्रहपूर्वक कमाटीबाग में ले गए। यहाँ, उनकी अनिच्छा के बावजूद उनका प्रथम फोटू निकलवाया। स्वामीश्री ने अपनी तसवीर देख कर कहा था कि इस छवि का आम जनता में प्रचार नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा करने वाले हैं तो मुझे आभी अभी बता दो ताकि मैं इस तसवीर को यहीं पर फाड़कर फेंक दूँ।'

39. गुणातीत के लिए सिर मुँड़वाया है

सारंगपुर में निर्माणाधीन मन्दिर में रुकावट डालने के लिए विरोधियों ने बार-बार प्रयास किया। परन्तु भगवान की कृपा, स्वामीश्री का निश्चय एवं संतों, भक्तों के समर्पण से निर्माण का कार्य अविरत जारी रहा। लोग कहते ही रह गए कि 'यहाँ, तो ठाकुर द्वारा होगा' तथा 'ऊब करके ये लोग मंदिर को अधूरा छोड़कर भाग जाएँगे'। वे लोग कहते रहे और देखते ही रह गए कि मन्दिर आखिर बन ही गया तथा मूर्ति प्रतिष्ठा का दिन निश्चित भी हो गया। 'अब इस काम को कैसे रोका जाए?'

विरोधियों अब दूसरी ही चाल चली। वे लोग लीमड़ी के ठाकुरसाहब को मिले। उनके कान भरने का ही उनका इरादा था। यदि ठाकुरसाहब ही स्वामीश्री के विरोधी बन जाए तो काम रोकने में कोई कठिनाई नहीं होगी। ऐसा सोचकर वे ठाकुरसाहब से कहने लगे कि 'शास्त्री तो हमारे इष्टदेव राधाकृष्ण को छोड़कर अपने गुरु जागा (भक्त), प्रागा (प्रागजी भक्त) की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाने वाले हैं। और कुछ न सही, मध्यमन्दिर में

राधाकृष्ण की मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाए तभी वह स्थान, मन्दिर कहलाने योग्य रहेगा।'

ठाकुरसाहब के हृदय में यह बात बस गई। वे स्वामीश्री के दर्शन के लिए सारंगपुर पधारे। स्वामीश्री ने उनका उचित सम्मान किया। जब वे मंदिर देखने के लिए पधारे, तो सहज ही पूछा, 'जैसे इस गाँव के हनुमान मन्दिर में गोपालानन्द स्वामी द्वारा प्रसादीभूत एक चमत्कारी लाठी है, जो भूतों को भगा देती है, क्या आपके पास भी ऐसी कोई चमत्कारिक वस्तु है?'

यह सुनकर बोटाद के नगरसेठ हिंमतलालभाई ने कहा, 'बापू! आप स्वामीजी को पहचानते नहीं। ये तो ऐसी कई नई लाठियाँ पैदा कर सकते हैं, सत्संग में चारों ओर उनका प्रभाव फैल रहा है।'

इतना सुनते ही ठाकुरसाहब बोल उठे, 'स्वामीजी के प्रताप का अनुभव तो मुझे भी हो चुका हैं।'

तत्पश्चात् ठाकुरसाहब ने जिज्ञासा प्रकट की कि 'स्वामीजी, राधाकृष्णदेव की मूर्तियों की प्रतिष्ठा इस मंदिर में किस स्थान पर की जाएगी? मुझे लगता है की राधाकृष्णदेव की प्रतिष्ठा मध्यमन्दिर में की जानी चाहिए।'

स्वामीश्री को मालूम हो गया कि यह प्रश्न ठाकुरसाहब का नहीं, किन्तु उनके कान भरनेवाले लोगों का हैं। प्रश्न सुनते ही उनकी आँखे अलौकिक प्रकाश से रोशन हो उठी। उन्होंने राजसत्ता के प्रभाव के तले पराजित हुए बिना बेधड़क उत्तर दिया कि 'ठाकुरसाहब, हमने जो कष्ट सहन किए हैं, वे केवल अपने इष्टदेव महाप्रभु सहजानन्द स्वामी एवं गुणातीतानन्द स्वामी की उपासना के लिए ही किए। उन्हीं के लिए सिर मुँडवाया है, अतः इस मन्दिर के मध्य शिखर में तो श्रीजीमहाराज और गुणातीतानन्द स्वामी की ही मूर्तियाँ प्रतिष्ठत होंगी और राधाकृष्णदेव की मूर्तियाँ प्रथम खण्ड में विद्यमान रहेंगी।'

ऐसी निडर एवं स्पष्ट सत्तावाही घोषणा सुनकर बापू ने अपना आग्रह छोड़ दिया और स्वामीश्री से कहने लगे : 'आप जो योग्य समझें, करें, हमारी बातों की ओर ध्यान न दें।' स्वामीश्री उनका भाव देखकर प्रसन्न हुए। विरोधियों का यह प्रयास भी विफल साबित हुआ।

40. सारंगपुर मन्दिर में मूर्तिप्रतिष्ठा

सारंगपुर में सभी सन्त एवं सैकड़ों हरिभक्त हाड़तोड़ मेहनत से मंदिर निर्माण के कार्य में जुड़ गए थे।

एकबार जूनागढ़ के सद्‌गुरु स्वामी बालमुकुन्ददासजी अपने संत मंडल के साथ सांरगपुर पधारे थे। स्नान के लिए वे नारायण कुंड की ओर जाते हुए मन्दिर के पास पधारे और कोठारी शंकर भगत को बुलाकर कहने लगे कि 'आप सब सन्तों की सेवा देखकर मुझे बड़ा गर्व होता है, महाराज और स्वामी की जो सेवा पाँच सौ परमहंसों को नहीं मिली, वह आप लोग कर रहे हैं। यह शक्ति आप लोगों की नहीं है, अक्षरधाम की अनेक मुक्त आत्माएँ आप लोगों में बसकर यह काम कर रही हैं। आप लोग वास्तव में बड़े भाग्यशाली हैं।'

यह सुनकर सभी बड़े उत्साहित हुए और दुगने वेग से सेवा कार्य करने लगे।

देखते ही देखते सं. 1972 वैशाख शुक्ला षष्ठी का दिन आ गया। मूर्तिप्रतिष्ठा के लिए आज का शुभ मुहूर्त तय किया गया था।

स्वामीश्री एवं स्वामी निर्गुणदासजी ने उत्सव सम्बन्धी आयोजन कर दिया था। हज़ारों हरिभक्तों के निवास एवं भोजन की व्यवस्था हो चुकी थी। स्वामीश्री ने चार सौ मन सूजी का हलुवा बनवाने का आदेश दिया। सतत पाँच दिन तक हलुवा बनाते-बनाते हलवाई थक गए, तब स्वामीश्री ने हलवाइयों को कहा, 'अब आप आगे नहीं बनाएँगे।' परन्तु पाँच दिन तक केवल ढाई सौ मन का हलुवा तैयार हुआ था। स्वामीश्री ने कहा, 'भगवान की दया से इतने ही से काम चल जाएगा, आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें।'

प्रतिष्ठा के दिन स्वामीश्री ने 'हरिलीलामृत' ग्रंथ से श्रीजीमहाराज तथा जीवा खाचर के आख्यान का पाठ किया तथा श्रीहरि के द्वारा सारंगपुर में मंदिर निर्माण की भविष्य वाणी की थी, उस बात का स्मरण करवाया।

यज्ञ के बाद स्वामीश्री के पवित्र करकमलों द्वारा मूर्तिप्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। मूर्तियों के सामने रखा हुआ दर्पण अपने आप फूट गया।

आरती के बाद भोजन के लिए हरिभक्तों की पंक्ति लग गई। इस अवसर पर भी विरोधी लोग भोजन शाला में प्रवेश कर गए थे, उन्होंने सोचा था कि भोजनसामग्री में कमी पड़ जाने से स्वामीजी की बेइज्जती होगी। वे भोजनशाला में घुसकर टोकरियाँ भर-भरकर हलुवा ले जाने लगे। न मालूम इतना हलुवा कहाँ ले जाते थे।

अचानक इस बात का ख्याल आने से एक स्वयंसेवक ने फौरन स्वामीश्री को खबर पहुँचाई और कहा, 'न जाने ये लोग इतना हलुवा कहाँ ले जाते हैं? अब तो हलुवे के कुण्ड के तलुए दिखाई दे रहे हैं और भोजन के लिए आने वाले लोग हजारों की संख्या में बाक़ी हैं।'

स्वामीश्री तुरन्त रसोई घर में पधारे। संदेह के घेरे में आने वाले हर एक को भोजनशाला से निकाला गया। हलुवे के कुण्डों के चारों ओर बांस की बाड़ तैयार कर दी गई। भरोसेमंद और जान-पहचान के युवकों को एक पंक्ति में खड़ा करके स्वामीश्री ने हरिभक्तों की पीठ में कुम-कुम का छापा लगाया और कहा, जिनकी पीठों पर कुमकुम का छापा न हो, उनके हाथों से हलुवे की टोकरियाँ वापस ले लें। बिना छापे के कोई हलुवा परोसने के लिए नहीं जाएगा। यदि कोई ऐसा दिखा तो उसे पकड़कर एक और बिठा देना। इस प्रकार पक्की सुरक्षा करके हलुवे के कुण्डों को वस्त्रों से ढँकवा दिए, तथा वहाँ ठाकुरजी की मूर्ति स्थापित करके घी का दीपक जला दिया। स्वामीश्री संतुष्ट होकर कहने लगे, 'अब आप चाहे जितना परोसो, कुण्ड खाली नहीं होंगे।' इस प्रकार सुबह से लेकर रात के बारह बजे तक हलुवा परोसा गया, करीब तीन लाख लोगों ने भोजन किया, फिर भी हलुवा कम नहीं हुआ! उत्सव के बाद पूरे आठ दिन तक सारे गाँव ने हलुवा खाया। फिर भी हलुवे की सुगंध उसी तरह तरोताजा थी।

स्वामीश्री ने अब तो अगल-बगल के गाँवों की गोशालाओं में भी हलुवा भेजा, ताकि पशु भी प्रसाद पाकर धन्य। स्वामीश्री के ऐसे दिव्य प्रभाव से विरोधियों के आयोजन पर फिर एक बार पानी फिर गया।

प्रतिष्ठा के बाद स्वामीश्री को सौराष्ट्र के गाँव-गाँव से निमंत्रण मिलने लगा। इसी विचरण के सिलसिले में वे मोजीदड़ गाँव पधारे। वहाँ प्रेमी हरिभक्तों ने भव्य स्वागत की तैयारियाँ आरम्भ की थीं। जब स्वामीश्री को

इस बात का पता चला, तो कहने लगे कि 'साधु के लिए ऐसा सम्मान शोभास्पद नहीं हैं।' फिर उन्होंने गुरु गणेशभक्त की ओर देखकर पूछा, 'क्यों गणेश भक्त! साधु को सम्मान देना योग्य है क्या?'

सात्विक प्रकृति के इस भक्त के मन में स्वामीश्री के प्रति यही संदेह हो रहा था कि शास्त्रीजी का इतना सम्मान उचित नहीं होगा। उनके हृदय की ही बात स्वामीश्री के मुँह से निकली तो वे चकित रह गए। उनके हृदय में विश्वास हो गया कि 'वास्तव में ये कोई साधारण साधु नहीं हैं, ये तो श्रीजीमहाराज के परम कृपापात्र परम एकान्तिक महापुरुष ही हैं।'

41. अटूट विश्वास

लगातार विचरण के बाद स्वामीश्री पुनः सारंगपुर पधारे। कुछ अधूरे काम अभी भी पूर्णता की ओर गति कर रहे थे। सोमा भगत और स्वामी अक्षरपुरुषोत्तम दासजी ऐसे ताकतवर थे कि दोनों बड़े-बड़े पत्थरों को फूल की भाँति उठाकर उचित जगह पर रख देते।

एक दिन की बात है, वे मध्यशिखर पर करीब डेढ़ सौ मन का गढ़ा हुआ पत्थर, सात मोटे रस्सों से बाँधकर चैनकुप्पे के सहारे धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा रहे थे। अपना काम निर्विघ्न रूप से हो, इसी प्रार्थना के साथ वे स्वामिनारायण महामंत्र का जप भी कर रहे थे। परन्तु अचानक एक के बाद एक छः रस्से टूट गए। पर्वत के समान वह विशाल पाषाण-खण्ड केवल एक ही रस्से के सहारे लटक रहा था। नीचे उपस्थित लोग यह देखकर कुहराम मचाने लगे। सभी के हृदय हलक तक आकर रुक गए थे। क्योंकि पत्थर के गिरने से केवल उस पत्थर का ही नहीं नीचे तराश कर तैयार किए हुए छोटे-मोटे अनेक पत्थरों की चकनाचूर होने की संभावना बढ़ गई थी। वह पत्थर किसीके भी सिर पर मौत बनकर टूट सकता था।

किसी ने दोड़कर स्वामीश्री को बुला लिया। स्थिति की गंभीरता देखकर स्वामीश्री ने अत्यंन्त आत्मविश्वास के साथ अपना दाहिना हाथ ऊँचा किया और सोमा भगत की ओर देखकर कहा, 'अब यह पत्थर नहीं गिरेगा, ऊपर चढ के रस्से बांध दो।' सोमा भगत के लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न था। करीब सत्तर फीट की ऊँचाई पर एक ही रस्से के सहारे लटक रहे

ड़ेढसौ मन के पत्थर पर कूदना, कुछ देर बैठकर सभी रस्से ठीक ढंग से बांधना, इतना सरल काम नहीं था, जितना दिख रहा था। निश्चित् ही सोमाभगत मौत के साथ लोहा ले रहे थे। थोड़ी सी भी गलती पत्थर के साथ सोमा भगत को भी चूरचूर कर सकती थी। परन्तु वे तो स्वामीश्री की मर्जी के मरजिये थे।

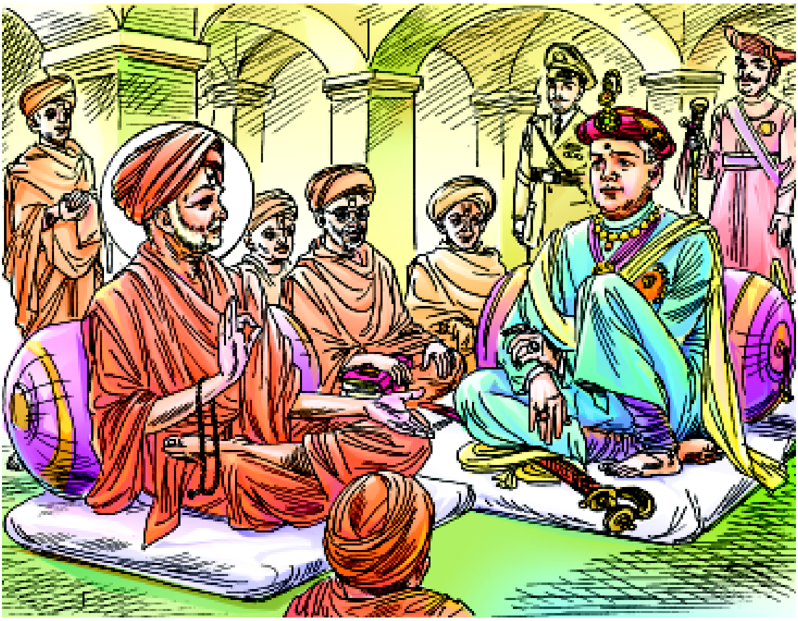
उनको स्वामीश्री के वचनों पर पूरा विश्वास था। वे तो तुरन्त शिखर पर चढ़ गए, मन ही मन महाराज तथा स्वामीश्री का स्मरण करके उस पत्थर पर छलाँग लगा दी। सभी साँस रोक कर सोमा भगत की भक्ति को टकटकी लगाकर देख रहे थे। कुछ पलों तक पत्थर एक भयानक झटके साथ झूलने लगा। सोमा भगत ने बड़े धैर्य से सभी रस्से बाँध दिए और फिर एक बार शिखर पर छलाँग लगा दी। नीचे उतरते ही उन्होंने स्वामीश्री के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर दिया। अपने वचन पर जान की बाजी लगा देने वाले इस भक्त को स्वामीश्री ने गले लगा दिया। कैसे थे स्वामीश्री के भक्त और स्वामीश्री की दिव्य प्रतिभा!

42. संत परम हितकारी

स्वामीश्री बोचासण में बिराजमान थे। वड़ोदरा के महाराजा श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड निकट में ही स्थित भादरण में आए हुए थे। स्वामीश्री ने झवेरभाई द्वारा उनको बोचासण आने के लिए निमंत्रण दिया। उन्होंने झवेरभाई से कहा था कि 'मेरे पास पन्द्रह मिनट से ज्यादा समय नहीं है, मैं उतने समय के लिए बोचासण आ जाऊँगा।'

स्वामी निर्गुणदासजी यह सुनकर कहने लगे कि आप देखना, वे पन्द्रह मिनट के बदले यदि पैंतालीस मिनट रुकें, तो समझना कि वह स्वामीश्री के प्रभाव का परिणाम है।

महाराजा गायकवाड समय होते ही बोचासण आ पहुँचे। स्वामीश्री ने बड़े स्नेहभाव से उनका सम्मान किया। मन्दिर में दर्शन करके वे स्वामीश्री के पास आ पहुँचे। दर्शन करते ही उन्होंने स्वामीश्री का चरणस्पर्श किया और कहने लगे, 'तो ये ही वे स्वामीजी हैं, जिनकी कीर्ति आज सारे गुजरात में फैली हुई है!' वे वन्दन करके बैठ गये। स्वामीश्री के साथ वार्तालाप



करते हुए वे इतने प्रसन्न हो गए कि कब पौन घण्टा बीत गया, उनको खबर तक न रही । वे अपने पुत्र की मृत्यु के कारण अत्यन्त दु:खी थे।

स्वामीश्री ने उनको सांख्य निष्ठा के साथ-साथ भगवान में मन रखने के लिए बहुत ही प्रेरक मार्गदर्शन दिया। महाराजा का हृदय स्वामी की बातें सुनकर हल्का हो गया। स्वामीश्री ने कहा, 'आपकी उम्र अब पचास साल की हो चुकी है, अब तो आपको चाहिए कि राज-काज की झंझट छोड़कर अपने आपको दूसरे पुत्र पर शासन का उत्तरदायित्व सौंप देना चाहिए। अब आपको किसी सद्गुरु की शरण लेकर अध्यात्म-मार्ग पर उन्मुख हो जाना चाहिए।

स्वामीश्री के उपदेश से उनके हृदय में अपार शांति की अनुभूति होने लगी। महाराजा को भी स्पष्ट रूप से सत्योपदेश देनेवाले स्वामीश्री के प्रति उनके मन में अत्यधिक सम्मान पैदा हुआ।

प्रणाम करके उन्होंने विदा होने की आज्ञा माँगी, तो स्वामीश्री ने उनके मस्तक पर अपना वरद हस्त रखकर उनको आशीर्वाद दिया।

एकबार वे कथा-प्रसंग के लिए आणंद पधारे थे। कथा-प्रसंग में अचानक शोर-शराबा सुनाई देने लगा। कुछ ही पलों में खबर मिली कि

स्वामीश्री के सन्निष्ठ भक्तराज मोतीभाई का घर आग में जल रहा है। स्वामीश्री तुरन्त ध्यानस्थ हो गए। कुछ ही पलों में फिर एक बार खबर मिली कि आग बुझ चुकी है, तो सभी को आश्चर्य हुआ। इसी बीच अचानक किसी का ध्यान स्वामीश्री के हाथों पर गया। देखा तो उनके हाथ कोहनी तक जल गये थे। स्वामीश्री ने सभा-स्थल पर बैठकर ही मोतीभाई के घर की आग बुझा दी थी। गद्‌गद होकर मोतीभाई, स्वामीश्री के हाथों पर तेल लगाने लगे। भक्तों के प्रति कितनी करुणा!

43. वड़ताल के साथ समाधान की चर्चा

स्वामीश्री के स्नेही हरिभक्त वड़ताल मन्दिर की व्यवस्थापक समिति में भी चुन लिए गए थे। उन लोगों की भावना थी कि किसी तरह वड़ताल के साथ समाधान हो जाए और स्वामीश्री पुनः वड़ताल पधारें, तो सम्प्रदाय में उनकी दिग्विजय हो जाए। उन्होंने अपनी भावनाओं को साकार करन हेतु प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। कोठारी गोवर्धनभाई तो अब निवृत्त हो चुके थे, फिर भी उन्होंने सलाह दी कि 'आपने जो धाम, धामी और मुक्त की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की है, उसको यदि आचार्य मान्य रखें और वे उन मूर्तियों की आरती उतारें, तभी समाधान हो सकता है अन्यथा नहीं।'

कोठारी की ऐसी दृढ़ निष्ठा देखकर स्वामीश्री बहुत प्रसन्न हुए।

समाधान की चर्चा आगे बढ़ ही रही थी कि कुछ साधुओं के हृदय में खलबली मच गई। वे सोचने लगे कि यदि समाधान हो गया और शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी यहाँ आ गए, तो समूचे सत्संग को अपनी मुट्ठी में कर लेंगे। यदि ऐसा हुआ तो हमें कोई नहीं पूछेगा।

वे एक युक्ति सोचकर आचार्य के पास पहुँचे और निवेदन किया कि आप शास्त्री के साथ समाधान करें, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है, हम तो इससे प्रसन्न हैं। यज्ञपुरुषदासजी जैसे विद्वान संत यदि वड़ताल में पधारेंगे, तो सत्संग में वृद्धि ही होगी, किन्तु बात यह है कि उनके द्वारा प्रारंभ किए हुए मन्दिर अभी अधूरे पड़े हैं, उनको पूरा करने में हमारे व्यर्थ के दो-तीन लाख रुपये खर्च हो जाएँगे।

इसलिए हमारी यह राय है कि उनको अपने मन्दिर पूरे कर लेने

दीजिए, उसके बाद समाधान की चर्चा की जाए, तो बहुत पैसे बचेंगे।

आचार्य उन लोगों की मीठी बातों के चक्कर में फँस गए और समाधान की चर्चा वहीं रुक गई। स्वामीश्री ने उन हरिभक्तों से कहा कि हो सकता है, हमारे द्वारा श्रीजीमहाराज को कोई विशेष काम करवाना होगा और विश्वभर में सत्य सिद्धांत का प्रचार करवाना होगा; इसीलिए समाधान नहीं हुआ। यह भी भगवान की ही मरजी समझनी चाहिए।

कभी-कभी वे इस प्रसंग का स्मरण करते, तो कहते कि यदि उन दिनों समाधान हो गया होता, तो अटलादरा, गोंडल, गढ़डा आदि स्थानों पर अक्षरपुरुषोत्तम मन्दिरों का निर्माण कैसे हो पाता?

कुछ दिनों के बाद स्वामीश्री सारंगपुर पहुँचे। यहाँ महुवा के वैष्णव भक्त सेठ नरसिंहदासजी आए हुए थे। वे अपने गाँव में लक्ष्मीनारायण मंदिर बना रहे थे। स्वामीश्री के हाथों मूर्तिप्रतिष्ठा कराने की उनकी इच्छा थी। परन्तु स्वामीश्री का स्वास्थ्य ठीक न देखकर वे कुछ बोल नहीं पाते थे। एक दिन स्वामीश्री ने स्वयं उनसे पूछा, 'आप मन्दिर-निर्माण के लिए मुझे अपने गाँव ले जाना चाहते हैं, तो चलिए; मंदिर बनाने के लिए ही तो मेरा जन्म हुआ है।' इतना कहते हुए स्वामीश्री तुरन्त पलंग से उठकर तैयार हो गए। अपनी बीमारी से मुक्त होकर वे तुरन्त महुवा की ओर चल पड़े।

एकबार स्वामीश्री आणंद से सारंगपुर जाना चाहते थे। परन्तु टिकट के लिए एक भी पैसा नहीं था। अपने पास एक फूटी कौडी भी न रखनेवाले स्वामीश्री को रेलगाड़ी का टिकट कोई कटवा दे, तभी वे सारंगपुर जा सकते थे। उन्होंने आणंद शहर में तलाश की, परन्तु सारे हरिभक्त विवाह प्रसंग के लिए बाहर गए हुए थे। शायद कोई मिल जाए, यह सोचकर स्वामीश्री ने गाँव से स्टेशन और स्टेशन से गाँव तक चार चक्कर काट चुके थे, परन्तु टिकट कटानेवाले कोई हरिभक्त नहीं मिला। अन्त में केशवलाल के पुत्र गोरधनभाई मिल गए। उन्होंने टिकट कटवा दिया और वे रेलगाड़ी से सारंगपुर पहुँचे।

सर्दी हो, गर्मी हो या मूसलाधार वर्षा हो, स्वामीश्री हमेशा बोटाद स्टेशन से 14 कि.मी. चलकर ही सारंगपुर जाते थे। अपना सामान स्वयं सिर पर अथवा कन्धों पर उठा लेते। उनके साथ में कमजोर या छोटी उम्र के

साधु होते, तो उनका सामान भी स्वामीश्री बिना किसी संकोच के स्वयं ढो लेते थे।

44. अड़सठ तीर्थ

खेड़ा जिले का छोटा सा गाँव आशी स्वामीश्री की पधरावनी से पावन हुआ। उनके साथ स्वामी ज्ञानजीवनदासजी (योगीजी महाराज) भी[१] पधारे थे। वे अपनी आदत के अनुसार प्रतिदिन प्रातः तीन बजे उठकर प्रभाती-भजन गाते थे। एक दिन उन्होंने नरसिंह मेहता का प्रसिद्ध भजन 'प्राण थकी मुने वैष्णव वहाला' गाना आरंभ किया। भजन में उन्होंने गाया कि-

'अड़सठ तीरथ मारा सन्त ने चरणे
कोटि गंगा, कोटि काशी रे।'

यह सुनकर मन्दिर में सोए हुए वृद्ध रणछोड पटेल बोल उठे, 'महाराज! ऐसा क्यों गाते हैं? क्या इस कलियुग में ऐसे संत होते हैं कि जिनके चरणों में अडसठ तीर्थो का निवास हो? ऐसी गप्प नहीं हाँकनी चाहिए।'

योगीजी महाराज ने सहज भाव से कहा, 'ठीक है, पटेल, हम दूसरा भजन गाएँगे।' इतना कहकर उन्होंने दूसरा भजन आरम्भ किया।

रात्रि को कथा के बाद स्वामीश्री मंदिर के आँगन में रखी पाट पर विश्राम ले रहे थे। कुछ दूरी पर रणछोड भगत का बिस्तर लगा हुआ था। यह वृद्ध आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित थे तथा बीमारी के कारण रातभर जागते रहते थे। उसी रात को वे आँगन के द्वार बन्द करके मंदिर में लगे बिस्तर पर माला फेरने लगे। ठीक एक घण्टे के बाद आँगन के द्वार अपने आप खुल गए। एक सफेद रंग की देवांशी गाय मन्दिर के भीतर आई, आँगन में लगी स्वामीश्री की पाट के पास रुककर उनके चरणों में तीन बार मस्तक झुकाया, नमस्कार किए और दरवाजे के बाहर चली गई।

रणछोड़ भगत अब तक स्वप्न की भाँति यह सब देख रहे थे। वे तुरन्त खड़े हुए और गाय का पीछा किया। परन्तु चन्द्र के उजाले में वह कुछ देर तक दिखाई दी और सुनसान गली में अचानक अदृश्य हो गई। उन्होंने बड़ी देर तक गाय की तलाश की; परन्तु वह कहीं भी नहीं दिखाई

दी। उनको अगले दिन प्रात:काल का प्रभाती पद स्मरण में आ गया। मन ही मन उनको प्रतीति हो गई कि अवश्य मुझे आज अड़सठ तीर्थों ने गाय के रूप में दर्शन दिया, जो स्वयं को पावन करने के लिए गाय का रूप धारण करके, स्वामीश्री के चरणों में प्रणाम करने के लिए आए थे।

रोज की तरह आज भी योगीजी महाराज ब्राह्ममुहूर्त में जागे। तुरन्त रणछोड भगत ने कहा, 'महाराज! आप वह 'अड़सठ तीरथ' वाला भजन गाइए।'

स्वामी ने कहा, 'क्यों भगत! कल तो आप उसके लिए मना कर रहे थे!'

रणछोडभाई ने कहा, 'वह कल की बात थी, आज की बात कुछ और है। गत रात को गाय के रूप में स्वयं अड़सठ तीर्थों ने आकर मुझे दर्शन दिया। इसीलिए मेरा भ्रम टूट गया। आज भी ऐसे संत विद्यमान हैं कि जिनके चरणों में समस्त तीर्थ आकर पावन होते हैं।'

इतना कहकर उन्होंने पूरी घटना योगीजी महाराज को सुनाई और कहा कि 'भाई! स्वामी तो बहुत समर्थ महापुरुष हैं।' यहाँ से स्वामीश्री सारंगपुर लौटे।

यहाँ एकबार स्वामीश्री सहज ही कहने लगे कि वडताल के आचार्य लक्ष्मीप्रसादजी ने हम पर बड़ा एहसान किया है कि वे हमसे प्रतिकूल रहे, तभी तो हम वड़ताल से बाहर निकलकर अक्षरपुरुषोत्तम उपासना के मन्दिरों का निर्माण कर सके और अनेक को यह बात समझा सके।'

स्वामीश्री की दृष्टि हमेशा विरोधियों के गुण देखा करती थी। सुभाषित में ठीक ही कहा है कि *गुणायन्ते दोषा: सुजनवदने।* उनके हृदय में किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं था। वे हमेशा सभी के गुण ही ग्रहण करते थे, यही उनकी स्वाभाविक वृत्ति थी।

45. अक्षरपुरुषोत्तम की माधुकरी

वरिष्ठ हरिभक्त कुबेरभाई के आग्रह से स्वामीश्री भावनगर पधारे।

यहाँ एक दिन सुवह उन्होंने इच्छा व्यक्त की, 'हमें आज झोली लेकर शहर में भिक्षा माँगने जाना है।'

कुबेरभाई ने विस्मित होकर कहा, 'स्वामीजी, यहाँ आप को भिक्षा

माँगने की क्या आवश्यकता है ? जबकि, हम लोग आपकी सेवा में हैं! आप शहर में झोली लेकर निकलें, यह हमारे लिए बड़ी लज्जाजनक बात होगी।'

स्वामीश्री ने कहा, 'ऐसी बात नहीं है, आप तो सेवा करते ही हैं; परन्तु अनेक मुमुक्षुओं को संतों के दर्शन हों, इसीलिए हम श्रीजीमहाराज की झोली लेकर शहर में घूमना चाहते हैं।'

सारंगपुर गाँव में भी स्वामीश्री झोली लेकर भिक्षा के लिए निकलते थे। स्वामी निर्गुणदासजी हमेशा उनको मना करते और कहते, 'जब हम सब आपकी सेवा में हैं, तो आपको भिक्षा माँगने की क्या आवश्यकता है ?'

स्वामीश्री कहते, 'अक्षरपुरुषोत्तम के लिए यदि श्वपच (चांडाल) के हाथों बिकना पड़े, तो वह भी करने को मैं तैयार हूँ, मेरी झोली में अनाज का एक कण डालनेवाले को भी हमें अक्षरधाम में ले जाना है।' स्वामीश्री के इस महान आशय को समझने के बाद हर कोई मौन हो जाता।

एकबार स्वामीश्री सारंगपुर में बिराजमान थे। वहाँ कथाप्रसंग पर बापुभा ने पूछा, 'स्वामीजी, वर्तमान समय में महाराज और स्वामी की प्रसन्नता किस साधना में है ?'

स्वामीश्री ने कहा, 'आज तो अक्षर और पुरुषोत्तम के स्वरूपों की मध्यमन्दिर में प्रतिष्ठा करवाने में और उनकी उपासना के लिए मन्दिर निर्माण करने में ही उनकी प्रसन्नता है। इस कार्य में नींव खोदकर, सामान उठाकर, पत्थर ढोकर, इतना ही नहीं, एक पैसा भी देकर जो सहायता करेगा, उन सबको वासना तथा स्वभावों की गंदगी से शुद्ध करके श्रीजीमहाराज अक्षरधाम में ले जाएँगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।'

46. दिव्य समाधि

भगवान स्वामिनारायण ने स्वामीश्री द्वारा समाधि का चमत्कार करना प्रारंभ किया था। सर्वप्रथम धर्मकुल के राधारमणप्रसादजी को सारंगपुर के मन्दिर में श्री हरिकृष्ण महाराज की मूर्ति का दर्शन करते हुए समाधि लग गई। पुजारी ने हरिकृष्ण महाराज को आज जो रूमाल हाथ में दिया था, वही रूमाल महाराज ने समाधि अवस्था में राधारमणप्रसाद को दिया। ठीक उसी समय यज्ञशाला के यज्ञकुण्ड में अलौकिक तेज प्रकट हुआ। जो दूर तक

लोगों को दिखाई दिया। कुछ ही पलों के बाद अचानक प्रकाश के तीन वर्तुल दिखाई दिए, जिनमें श्रीजीमहाराज, गुणातीतानन्द स्वामी और गोपालानन्द स्वामी के पृथक्–पृथक् दर्शन होने लगा। थोडी देर में तीनों मूर्तियाँ अदृश्य हो गईं।

बोटाद – निवासी तथा वड़ताल संस्था के साथ जुड़े हुए एक वरिष्ठ हरिभक्त ओधवजीभाई, स्वामीश्री के प्रभाव की बातें सुनकर उनके दर्शन के लिए सारंगपुर आए। यहाँ स्वामीश्री का ज्ञानलाभ लेकर वे कुछ देर के बाद अपने निवास स्थान पर गए। वहाँ पर उन्होंने देखा कि चारों ओर इधर उधर संत और हरिभक्त छोटे–छोटे वृंदों में मिलकर कथावार्ता कर रहे थे। कहीं भी कोई व्यक्ति व्यवहार, निन्दा, द्रोह अथवा किसी के अवगुण की चर्चा नही करता था। सर्वत्र भगवान अथवा उनके संत की महिमा ही सुनाई देती थीं। सन्तों–भक्तों पर छाए हुए स्वामीश्री के प्रभाव को देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। जब वे बोटाद की ओर लौटे, तो उनके मन में स्वामीश्री तथा अक्षरपुरुषोत्तम सिद्धांत की प्रति अत्यधिक लगाव हो चुका था।

उन दिनों गांधीजी दांडीकूच करके नमक के सत्याग्रह के लिए दांडी की ओर जा रहे थे। खेड़ा जिले का नवागाम नामक गाँव मार्ग में ही पड़ता था। जब गांधीजी को मालूम हुआ कि शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी नवागाम में बिराजमान हैं, तो उन्होंने स्वामीश्री से मुलाकात करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने स्वामीश्री की साधुता तथा प्रभाव के विषय में बहुत कुछ सुना था। उनके आमंत्रण पर स्वामीश्री गांधीजी के निवास पर पधारे। दोनों महापुरुषों की मुलाकात विलक्षण थी। नम्रतापूर्वक गांधीजी ने अपने उद्देश्य का विवरण दिया तथा आशीर्वाद मांगते हुए कहा, 'आप आशीर्वाद दीजिए, जिससे हमारा कार्य सफल हो।'

स्वामीश्री ने कहा, 'आपके प्रयत्नों से देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हो, इस उद्देश्य के साथ हमारे योगीजी महाराज आज से विशेष नामजप करेंगे; परंतु नियम–धर्म का पालन करेंगे, तो भगवान आपका साथ देंगे।'

गांधीजी इस आशीर्वाद से प्रसन्न हुए। इस मुलाकात के बाद योगीजी महाराज ने स्वामीश्री की आज्ञा के अनुसार देश स्वतन्त्र हो, इस उद्देश्य के साथ प्रतिदिन 25 माला फेरना आरम्भ किया।

47. गुणातीत के देहोत्सर्ग स्थान पर मन्दिर

सारंगपुर में वीरसद के वरिष्ठ हरिभक्त हरिभाई अमीन दर्शन के लिए आए हुए थे। उन्होंने गोंडल के महाराजा के साथ, गुणातीतानन्द स्वामी के देहोत्सर्ग स्थान 'अक्षरदेहरी' के विषय में चर्चा की थी। महाराजा को उन्होंने समझाया कि हम 'अक्षरदेहरी'[2] के स्थान पर विशाल भूमि संपादन करके वहाँ सुंदर मंदिर तैयार करना चाहते हैं। महाराजा भी अपने गुरु के स्थान पर मंदिर-निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने करीब दो लाख रुपये की ज़मीन का सौदा केवल पच्चीस हज़ार रुपये में तय किया। परंतु साथ-साथ तीन शर्त रख दी। 1. इस स्थान पर 'अक्षर देहरी' यथावत् रहनी चाहिए। 2. केवल तीन वर्ष में मंदिर निर्माण पूर्ण होना चाहिए। 3. मंदिर इतना भव्य हो कि उसके निर्माण में कम से कम दस लाख रुपये खर्च किए जाएँ।

हरिभाई अमीन ने शास्त्रीजी महाराज के सामर्थ्य को ध्यान में रखकर, तीनों शर्तें स्वीकार करके ज़मीन खरीद ली। सब कुछ तय करके आज वे स्वामीश्री के पास सारंगपुर आ पहुँचे। उन्होंने सहज भाव से कहा, 'स्वामीश्री, गोंडल की भूमि मैंने दो लाख रुपयों में खरीद ली है।'

अन्तर्यामी स्वामीश्री यह सुनकर मुस्कराने लगे और कहा, 'उस भूमि की कीमत भले ही दो लाख रुपये हों, परंतु आपने वह केवल पचीस हज़ार रुपयों में खरीदी है।' फिर कहा, 'इस पर महाराजा ने कुछ शर्त भी रखी हैं, पर आप उसकी चिन्ता न करें, इस स्थान पर हम दस क्या, बीस लाख रुपये खर्च कर सकते हैं।'

यह सुनकर हरिभाई अत्यंत विस्मित हुए। उन्होंने स्वामीश्री के चरणों में प्रणाम किया और मंदिर निर्माण के लिए आवश्यक धन एकत्र करने हेतु भरुच पहुँच गए।

जलझुलनी एकादशी के उत्सव पर स्वामीश्री ने सारंगपुर में चौबीस घण्टे की निरंतर धुन का कार्यक्रम आयोजित किया था। आज उन्होंने दिलरूबा बजाकर श्रीजी के चरणों में भक्ति अर्पण की। स्वामीश्री द्वारा छेड़ी हुई मधुर तान को सुनकर वहाँ उपस्थित पाँच हरिभक्तों और दो सन्तों

2. अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के समाधि-स्थल पर बनी देहरी।

को कृपासमाधि लग गई। सभी को अक्षरधाम तथा श्रीहरि के दर्शन हुए।

इन संतों में साधु नन्दकिशोरदासजी भी थे, उनका शरीर स्थूल था, फिर भी वे सहजरूप से योगासन करने लगे। क्योंकि समाधि की स्थिति में गोपालानन्द स्वामी उनको आसन करवाते थे!

पूर्णिमा के दिन सुबह स्वामीश्री ने हरिभक्तों को बाजरे की फ़सल काटने के लिए खेत में भेजा। वहाँ हरिभक्तों को पानी पिलाने के लिए स्वयं स्वामीश्री पानी की मटकी लेकर खेत में पधारे और सभीको पानी पिलाया! उनके दर्शन से ही कुछ हरिभक्तों को खेत में सेवा करते हुए समाधि लग गई।

कुछ दिनों के बाद हरिभाई अमीन स्वामीश्री के पास पधारे। उन्होंने प्रार्थना की कि गोंडल के मन्दिर के दस्तावेज करने के लिए आप हमारे साथ गोंडल पधारें। उन्होंने आवश्यक धनराशि एकत्र कर ली थी। स्वामीश्री गोंडल पधारे। वहाँ दस्तावेज की कार्यवाही पूर्ण की गई और विशाल मंदिर के लिए स्वामीश्री को भूमि का अधिकार सौंप दिया गया। गुणातीत मण्डल के समस्त हरिभक्तों में अक्षरदेहरी का कब्जा मिल जाने पर खुशी की लहर फैल गई।

स्वामीश्री ने सं. 1988 के पौष शुक्ला दशमी के दिन मन्दिर का खातमुहूर्त का शुभ मुहूर्त निकाला। इस शुभ अवसर पर हज़ारों हरिभक्त वहाँ एकत्र हो गए। राज्य की ओर से इस उत्सव में बहुत सहयोग दिया गया। महाराजा को सत्संगियों का उत्साह तथा स्वामीश्री के प्रभाव को देखकर प्रतीति हो गई कि स्वामीश्री शर्त के अनुसार बहुत ही जल्दी मंदिर का निर्माण संपन्न करेंगे। बड़ी धूमधाम से इस प्रसंग की पूर्णाहुति हुई।

स्वामीश्री पारायणपर्व पर महेसाणा जिले में राजपुर गाँव पधारे। अफ्रीका के भक्तराज हरमानभाई ने यहाँ आकर ज्ञानलाभ प्राप्त किया। देश के हरिभक्तों की सेवा, समर्पण तथा ज्ञान प्राप्त करने की तत्परता देखकर उन्होंने सोच लिया कि ऐसा लाभ अफ्रीका में कभी नहीं मिलेगा। अतः मुझे आफ्रीका वापस नहीं लौटना है। परंतु स्वामीश्री ने उनको आशीर्वाद देते हुए कहा था कि 'तुम्हें अफ्रीका अवश्य जाना है। वहाँ सत्संग वृद्धि के लिए प्रयास करते रहना। तुम्हारे द्वारा सत्संग की बहुत अभिवृद्धि होगी। यह श्रीजीमहाराज का वरदान है।'

आशीर्वाद का पाथेय लेकर हरमानभाई अफ्रीका गए।

गोडल के महाराजा की शर्त यद्यपि तीन वर्षों की थी, परन्तु स्वामीश्री ने निष्ठावान सन्तों एवं हरिभक्तों की तनतोड़ सेवा के सहारे केवल सवा दो वर्ष में मन्दिर का काम पूर्ण कर दिया। संवत् 1990 वैशाख शुक्ला दशमी का मुहूर्त प्रतिष्ठा के लिए तय हो गया। स्वामीश्री ने इस उत्सव पर हज़ारों हरिभक्तों को आमंत्रित किया और लिखा कि 'इस उत्सव पर जो हरिभक्त आएगा, उसको मैं अक्षरधाम ले चलूँगा, इसलिए ऐसे अवसर पर अनुपस्थित रहने की भूल कोई न करें।'

योगीजी महाराज ने इस उत्सव में अपार सेवा करके सभी को प्रसन्न कर दिया। राज्य शासन की ओर से बहुत अच्छा सहयोग मिला था। स्वामीश्री के शुभ करकमलों से मूर्तिप्रतिष्ठा संपन्न हुई। मूर्ति के सामने रखा हुआ दर्पण दिव्य प्रकाश के कारण टूट गया। चारों ओर जय-जयकार हो गई। रात को अक्षरदेहरी में स्वामी धर्मस्वरूपदासजी तथा तीन हरिभक्तों को समाधि लग गई, उनको अनन्त मुक्तों के साथ श्रीहरि, गुणातीतानंद स्वामी और अक्षरधाम के दर्शन हुए।

स्वामीश्री ने अक्षरदेहरी की अपार महिमा बतलाते हुए कहा, 'इस स्थान पर श्रीनाथजी मंदिर की तरह प्रतिदिन सात सौ रुपयों का भोग निवेदित होगा। इस स्थान की महिमा ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि रहेगी। यहाँ लोगों के मनोरथ पूर्ण होंगे।'

इस शुभ अवसर पर योगीजी महाराज को इस सर्वोपरि स्थान के महंतपद पर नियुक्त किया गया। गुणातीत स्थान के महंत के पद पर ऐसे गुणातीत पुरुष की नियुक्ति से सभी प्रसन्न हो गए।

48. इन्द्र को आह्वान

सं. 1992 में अहमदाबाद में भव्य पारायणपर्व का आयोजन किया गया। इस साल भाद्रपद तक वर्षा नहीं हुई थी। सारा गुजरात दुष्काल के दौर से गुजर रहा था। सभी मिलकर स्वामीश्री के पास प्रार्थना करने लगे, स्वामीश्री ने कहा, 'योगीजी महाराज से निवेदन करो, वे बहुत दयालु हैं, वे अवश्य श्रीजीमहाराज को प्रार्थना करेंगे।'



सत्संगिजीवन का पारायण पढ़ते हुए शास्त्रीजी महाराज
(श्रीनगर, सं. 1992)

योगीजी महाराज ने कहा, 'मैं तो सेवक हूँ, सब कुछ स्वामीश्री के हाथ में हैं, हम धुन का आरम्भ करें, स्वामीश्री की कृपा से वर्षा अवश्य होगी।'

स्वामीश्री ने धर्मस्वरूपदासजी से कहा, 'आप समाधि लगाकर बैठिए और महाराज से निवेदन कीजिए।'

उन्होंने समाधि में बैठकर श्रीहरि से प्रार्थना की। महाराज ने उनको कहा कि शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी करुणा की मूर्ति है। उनकी प्रार्थना से वर्षा अवश्य होगी, कोई दुःखी नहीं रहेगा।' दूसरे दिन से झरमर वर्षा का प्रारंभ हुआ। इसीलिए लोग संतुष्ट नहीं हुए।

दूसरे दिन भी स्वामीश्री ने धर्मस्वरूपदास से समाधि लगवाकर प्रार्थना करने के लिए कहा, उन्होंने महाराज से प्रार्थना की तो श्रीहरि कहने लगे, 'आज से मूसलाधार वर्षा आरंभ होगी।'

उस दिन समाधि में सात सेर घी का मगस का प्रसाद भी मिला। उसे देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। दिल्ली दरवाजे के पास सभी को इन्द्र के साथ सात सूँढ़वाले ऐरावत हाथी का दर्शन हुआ। हाथी पर श्रीजीमहाराज, गुणातीतानन्द स्वामी, गोपालानन्द स्वामी, भगतजी महाराज और इन्द्र बिराजमान थे। इन्द्र ने शाहपुर स्थित काशी विश्वनाथ महादेव में आकर सभा-स्थल में सभी के सामने स्वामीश्री की पूजा की।

श्रीहरि ने धर्मस्वरूपदासजी से कहा, 'मेघपति इन्द्र आज स्वयं पधारे हैं, अब वर्षा की कोई कमी नहीं रहेगी।' इतना कहकर सभी अदृश्य हो गए। अनेक सभाजनों को यह दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ। कुछ ही देर में बिजली चमकने लगी और मूसलाधार बारिश से सारा गुजरात सराबोर हो गया। इस चमत्कार की जानकारी 'संदेश' आदि वर्तमानपत्रों में भी पूरे विवरण के साथ छपी।

सं. 1994 में सोमेश्वर पीठवा के द्वारा गोंडल में 'सत्संगिजीवन' की पारायण का आयोजन हुआ। पारायण में भगवानदासजी नामक हरिभक्त स्वामीश्री की महिमा सुनकर पूना (महाराष्ट्र) से पधारे थे। उन्होंने संकल्प किया कि 'मेरे शहर में मन्दिर का निर्माण हो तथा श्रीजीमहाराज के दर्शन हों, तभी मैं अन्नग्रहण करूँगा।' अपने इस संकल्प की जानकारी उन्होंने किसी को नहीं दी।

पूर्णाहुति की कथा में स्वामीश्री व्यासपीठ पर बिराजमान थे। अचानक वे अदृश्य हो गए और उनके स्थान पर जरियान वस्त्रों में एवं कुसुंभी पगड़ी तथा अनेक अलंकारों से विभूषित श्रीहरि का दर्शन होने लगा।

भगवानदास को इस दर्शन से अत्यंत आश्चर्य हुआ। अपनी आँखें बार-बार साफ करके वे इस दृश्य की सच्चाई देख रहे थे। वे उठकर इस आश्चर्य की बात सभी को सुनाने लगे। कथा की समाप्ति के बाद स्वामीश्री ने कहा कि 'महाराज ने तुम्हारा संकल्प पूर्ण किया है, इसलिए चलो, भोजन कर लो, और सुनो, आज के बाद ऐसी प्रतिज्ञा कभी मत करना।'

पारायण में उपस्थित सभी हरिभक्तों को यह सुनकर दृढ़ निश्चय हो गया कि श्रीहरि आज शास्त्रीजी महाराज के द्वारा अखण्ड प्रकट हैं।

49. अटलादरा में मन्दिर का प्रारंभ

वड़ोदरा शहर से तीन मील की दूरी पर अटलादरा नामक गाँव है। वहाँ के मुखिया मथुरभाई पटेल उदार दिल के इन्सान थे। परंतु उनका जीवन कुसंग के कारण दुराचार की ओर फिसल गया था। उनकी पत्नी के कहने पर भी वे सत्संग या सदाचार की ओर चल नहीं पाते थे। अचानक एक दिन उन्होंने स्वामीश्री का नाम सुना। सुनते ही उनके जीवन में परिवर्तन आने लगा। वे अटलादरा गाँव में अपनी ज़मीन पर मन्दिर बनवाने के उद्देश्य से स्वामीश्री को निमंत्रित करने के लिए आ पहुँचे।

स्वामीश्री ने उनको कहा, 'तुम्हारे गाँव में आज जहाँ मुख्य मार्ग से खेत है, वहाँ पूर्वकाल में मूलु महेतर और कृष्ण माली नाम के दो भक्त रहते थे। उनके निमंत्रण से उस स्थान पर श्रीजीमहाराज स्वयं पधारे थे। इसीलिए वह खेत प्रासादिक तीर्थस्थान ही है। यदि वह स्थान मिलता है, तो वहाँ अवश्य मन्दिर बनवाएँगे।'

मथुरभाई ने कहा कि 'यदि आप वहाँ पर मन्दिर बनवाएँ, तो मैं आपको चाहे जितनी भूमि देने के लिए तैयार हूँ।'

स्वामीश्री ने वहाँ आकर प्रासादिक भूमि का निर्देश किया। वहाँ उस समय हरिजनवास था। मथुरभाई ने उन लोगों के लिए कुछ दूरी पर वैकल्पिक व्यवस्था की और प्रासादिक भूमि खरीदककर स्वामीश्री को समर्पित की।

एकबार सारंगपुर के पास आए हुए समढ़ियाला गाँव के हरखा पटेल, स्वामीश्री के पास आए और कहने लगे, 'स्वामीजी! मेरे कुएँ में पानी नहीं टिकता है। आप कृपा करें तो पानी टिके, और मेरे पास पाने की सुविधा हो जाए।'

स्वामीश्री ने उसे स्पष्ट कहा, 'तू सत्संगी होकर भी बिना स्थान के भोजन करता है, ऐसे अपवित्र आचार के कारण ही तेरे कुएँ में पानी नहीं टिकता! देखो, अब जब भी कुएँ में पानी आए, तो उस पानी से स्नान करके ही भोजन करने की प्रतिज्ञा करोगे, तब तुम्हारे कुएँ में पानी टिकेगा।'

स्वामीश्री ने आज उसे सदाचार की शिक्षा दी।

सारंगपुर में वे युवासंत स्वामी नारायणस्वरूपदासजी को अपने पास बैठाकर बड़े स्नेहभाव से संस्कृत की शिक्षा देते। कई बार उनसे भक्तचिंतामणि ग्रंथ की कथा सुनते। स्वामीश्री तथा संत-भक्तों का समुदाय उनके मधुर कंठ के कारण अत्यंत प्रसन्न होते। वे 'भक्तचिन्तामणि' के साथ कभी-कभी 'हरिलीलामृत' की कथा का भी पठन करते। स्वामीश्री बीच-बीच में सत्संग की कईं इतिहास कथाएँ स्नेहभाव से सुनाते।

कुछ दिनों के बाद सूरत के हरिभक्तों ने स्वामीश्री के सान्निध्य में नगर में पारायणपर्व का भव्य आयोजन किया। यहाँ स्वामीश्री अद्भुत ज्ञानवार्ता से सभी को उपासना तथा भगवन्निष्ठा की दृढ़ता करवाते थे। कथाप्रसंग में कुछ लोगों को समाधि भी लग जाती थी।

सूरत के प्रणामी सम्प्रदाय के आचार्य पूजनीय कृष्णप्रियाचार्यजी समाधि का प्रताप देखकर स्वामीश्री के प्रति अत्यंत आकर्षित हुए। वे स्वामीश्री की अप्रतिम साधुता, अपार विद्वत्ता और विलक्षण अहंशून्यता देखकर अपनी विद्वत्ता और आचार्यपद का अहंकार छोड़कर स्वामीश्री के चरणों में गिर पड़े।

उन्होंने सभाजनों के समक्ष कहा कि 'स्वामी यानी अक्षर तथा नारायण अर्थात् पुरुषोत्तम, यही अर्थ 'स्वामिनारायण' शब्द का उचित अर्थ है। यह अर्थ शास्त्रीजी महाराज ने सभी के समझाया है, आज श्रीजीमहाराज शास्त्रीजी महाराज के द्वारा इस धरातल पर प्रकट हैं।' अन्य सम्प्रदाय के विद्वान आचार्य का ऐसा सुंदर व्याख्यान सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।

50. गुरुहरि की प्रथम जन्म-जयंती

पूरे संप्रदाय के हरिभक्तों का संकल्प था कि बोचासण में धूमधामपूर्वक स्वामीश्री की 80वीं जयंती मनानी चाहिए। सबसे पहले अहमदाबाद के भक्तराज चम्पकभाई बेंकर ने अपने इस संकल्प से सभी को अवगत किया।

इस प्रसंग पर सत्संगियों की ओर से ठाकुरजी के चरणों में सवा लाख रुपयों की थैली अर्पण करने का भी निश्चय किया गया। 'त्यागी को रुपये की थैली नहीं लेनी चाहिए' यह स्वामीश्री का अभिप्राय था। इसीलिए वह धनराशि ठाकुरजी की सेवा में समर्पित करने का निर्णय हुआ।

सं. 2001 वसन्तपंचमी के दिन करीब दो लाख भक्तों की उपस्थिति में बोचासण गाँव ब्रह्मज्ञान के समुद्र में सराबोर होने लगा। सारे गुजरात से बड़े-बड़े प्रतिष्ठित महानुभाव इस उत्सव में पधारे थे। गोंडल राज्य के विद्याधिकारी चन्दुलाल पटेल तथा अन्य अधिकारी भी उपस्थित थे। सभी ने एक के बाद एक स्वामीश्री का गुणगान किया।

स्वामीश्री अटलादरा से अहमदाबाद पधारे। प्रतिवर्ष के अनुसार यहाँ पारायण का आयोजन किया गया था। स्वामीश्री श्रीमद्भागवत ग्रंथ लेकर अद्भुत कथा सुना रहे थे। सत्संगियों के साथ अन्य सम्प्रदाय के लोग भी यह सुनने के लिए बड़ी संख्या में उपस्थित रहते थे। स्वामीश्री की वाणी इतनी हृदयभेदक थी कि सभी के मन में सदाचार और उपासना की दृढ़ता होने लगती। वैष्णव विद्वान, शास्त्री विश्वनाथजी ने स्वामीश्री की कथा सुनकर कहा था, 'आज मुझे स्वामीश्री ने भक्तिरस का जो आनन्द दिया है, मैं कहता हूँ कि भागवत का कथारस एक तो शुकदेवजी जानते थे, दूसरा श्रीधर स्वामी जानते थे और आज स्वामीश्री के मुख से भागवत सुना तो लगा कि इतनी अच्छी तरह तो शायद श्रीधर स्वामी भी नहीं समझा सकते थे! क्योंकि स्वामीश्री साक्षात् भगवान का स्वरूप ही हैं। जो भगवत्स्वरूप हो, वही इस रस का आस्वाद करा सकता है। लगता है, इस कथा से शान्ति और आनन्द के बादल बरस रहे हैं।' वैष्णव विद्वान के ऐसे विशिष्ट अभिप्राय से हरिभक्त समुदाय प्रसन्न हो गया।

51. देखते ही देखते चौथा शिखरबद्ध मन्दिर

मूर्तिप्रतिष्ठा के लिए स्वामीश्री जब अटलादरा पधारे तब, आषाढ़ महीने के दिन चल रहे थे। समग्र गुजरात में इन्द्र की कृपा, जल के रूप में धरती पर बरस रही थी। सं. 2001 आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को प्रतिष्ठा का मुहूर्त निश्चित किया गया था। दो दिन से ही बरस रही बारिश के कारण लगता था कि प्रतिष्ठा में अवश्य विघ्न पैदा होंगे। व्यवस्थापक संत-हरिभक्त ने मिलकर अपनी चिंता स्वामीश्री के पास व्यक्त की।

स्वामीश्री ने स्मित करके कहा, 'आप चिंता मत करें। यह तो स्वयं श्रीजीमहाराज का ही कार्य है। प्रतिष्ठा के दिन बारिश अपने आप बन्द हो जाएगी।'

- और ऐसा ही हुआ जैसा स्वामीश्री ने कहा था। दूसरे ही दिन बारिश थम गई। प्रतिष्ठा की सारी तैयारियाँ पूर्ण हो गईं और निश्चित दिन पर धूमधाम से वेदमन्त्रों की ध्वनि के साथ विधिपूर्वक यज्ञ हुआ तथा स्वामीश्री के पवित्र करकमलों से भगवान स्वामिनारायण, गुणातीतानन्द स्वामी और गोपालानन्द स्वामी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई। इसल उत्सव पर स्वामीश्री ने कहा, 'अटलादरा का यह मन्दिर सर्वोपरि माना जाएगा। इस समय भले ही यह स्थान वड़ोदरा से दूर है, भविष्य में यह वड़ोदरा से बिल्कुल निकट हो जाएगा और वड़ोदरा का उपनगर बन जाएगा।'

आज उनके ये शब्द पूर्णत: सत्य साबित हुए हैं।

उस समय गुजरात के सुप्रसिद्ध नेता और शूरवीर समाज सेवक भाईलालभाई पटेल आणंद के पास 'विद्यानगर' नाम से विशाल शिक्षाधाम का निर्माण कर रहे थे। उन्होंने स्वामीश्री को विद्या का केन्द्र बनाने की अपनी योजना के विषय में बताया और निवेदन किया कि आपके आशीर्वाद से तथा आपकी चरणरज से विद्यानगर की भूमि पवित्र हो तथा जंगल में मंगल हो, इसीलिए आप वहाँ पधारने की कृपा करें। बचपन से ही वे स्वामीश्री से परिचित थे और उनकी महत्ता से पूर्ण प्रभावित थे।

उनके प्रेमपूर्ण निमंत्रण से स्वामीश्री विद्यानगर पधारे। भाईलालभाई ने वहाँ अपनी पूरी योजना समझाई। स्वामीश्री ने उनकी इच्छानुसार चारों ओर

घूमकर प्रासादिक पुष्पों से भूमि को पावन किया और आशीर्वाद दिया कि 'आपका संकल्प सिद्ध होगा तथा इस विद्याकेन्द्र से हज़ारों विद्यार्थी विद्या प्राप्त करके अपना जीवन निर्माण करेंगे।'

इस आशीर्वाद से भाईलालभाई के साथ ही अन्य अधिकारी वर्ग बहुत प्रसन्न हुआ।

वर्तमान में पाकिस्तान स्थित कराँची में उन दिनों हरिभक्तों का बड़ा समुदाय निवास करता था। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह से स्वामीश्री कुछ सन्तों तथा हरिभक्तों के साथ कराँची पधारे। जहाँ 'सत्संगिजीवन' ग्रंथ की पारायण का आयोजन किया गया था। स्वामीश्री ने यहाँ अनेक स्थान पर कथावार्ता का लाभ प्रदान किया। वे प्रतिदिन शहर में विद्यमान स्वामिनारायण मन्दिर में दर्शन के लिए जाते थे।

पारायण के अन्तिम दिन हरिभक्तों की विशाल सभा में उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा था, 'महाकाल आ रहा है, हरकोई अपना जो कुछ भी हो, वह समेटकर अपने वतन की ओर चले आना।' कुछ ही महीनों के बाद राजकीय परिस्थिति पलटने लगी।

देश का विभाजन हुआ और पाकिस्तान में अपना सब कुछ छोड़कर हिन्दुओं को भारत की ओर निर्वासित होकर निकलना पड़ा।

52. अक्षरधाम का द्वार

सं. 2004 के अन्नकूट पर स्वामीश्री सारंगपुर में बिराजमान थे।

अब 84 वर्ष की उम्र में उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। बीमारी में वे कई हरिभक्तों को सेवा करने का अवसर देते थे तथा कभी-कभी तो गंभीर बीमारी ग्रहण कर लेते थे। कभी-कभी अचानक भले चंगे हो जाते, तो कभी-कभी लगता था कि आज ही वे अपनी जीवनलीला समेट लेंगे। इस प्रकार सभी को उनकी दिव्य शक्ति का दर्शन हुआ कि वे नितान्त स्वतंत्र महापुरुष हैं, और अपनी इच्छानुसार बीमारी ग्रहण कर लेते हैं तथा अपनी इच्छा से उसका त्याग भी कर देते हैं।

सारंगपुर के मन्दिर का भव्य द्वार तैयार हो गया था। लोगों के मन में संदेह था कि इतना भव्य मन्दिर बड़ी कठिनाई से तैयार हुआ, अब इतना

बड़ा द्वार बनाने की क्या आवश्यकता है ? यह सुनकर स्वामीश्री कहते, 'कोई व्यक्ति यदि सारंगपुर आए और मन्दिर में न आकर दूर से केवल इस विशाल द्वार का ही दर्शन कर ले, तो उसके अंत समय पर श्रीजीमहाराज और स्वामी स्वयं उसे अपने धाम में ले जाने के लिए पधारेंगे।'

यह सुनकर सभी को स्वामीश्री के प्रभाव का दर्शन हुआ।

कुछ दिनों के बाद स्वामीश्री ने अहमदाबाद में हृदयरोग की गंभीर बीमारी ग्रहण की। सभी चिन्तातुर हो गए। युवा संत शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी तो आँसू बहाकर खूब रोए।

स्वामीश्री ने उनको आश्वासन देकर शान्त किया। यहाँ से वे पारायण के लिए राजपुर पधारे। वृद्धावस्था तथा हृदयरोग के कारण लोग उन्हें कथावार्ता करने तथा परिश्रम करने से रोकते थे कि 'स्वामीजी, आप आराम कीजिए।'

स्वामीश्री कहते कि 'मैं तो श्रीजीमहाराज की मूर्ति में अखण्ड आनन्द कर रहा हूँ। तुम्हारे जैसे हरिभक्त उपस्थित रहते हैं, महाराज स्वयं मुझे भीतर से आज्ञा करते हैं कि 'कथावार्ता करो, कथावार्ता करो।' उनकी इस आज्ञा को भला मैं कैसे टाल सकता हूँ?' वे बिना परिश्रम के कथावार्ता में निमग्न रहते।

53. सुवर्ण जयन्ती

स्वामीश्री ने जीवनभर अपार कष्ट सहे। देह सुख तथा विश्राम की परवाह किए बिना वे हमेशा धर्मप्रचार के लिए घूमते ही रहे। उन्होंने हमेशा हरिभक्तों को सच्चा ज्ञान दिया, उनको सच्ची बात समझाकर, धर्म की राह पर लाकर अपार सुख-शान्ति दी। ऐसे महापुरुष को प्रसन्न करने के लिए हम अपना सर्वस्व भी न्योछावर कर दें तो भी कम है, ऐसे आन्तरिक स्नेह से हरिभक्तों ने अटलादरा के स्वामिनारायण मन्दिर में स्वामीश्री की ८५वीं जन्म-जयन्ती धूमधाम से मनाने का संकल्प किया। इस अवसर पर स्वामीश्री की सुवर्णतुला करने का भी निर्णय लिया गया। जब स्वामीश्री को इस आयोजन का पता चला, तो उन्होंने साफ मना कर दिया, परंतु अंत में सत्संगियों के प्रेम के आगे झुककर स्वामीश्री को स्वीकृति देनी पड़ी।

सत्संगी भाई-बहनों के अंतर में, अपनी औकात के बाहर धन और



सोने के आभूषण देने के लिए समर्पण का सागर उमड़ पड़ा।

जयन्ती के पहले दिन संध्या के समय सुसज्ज हाथी पर बैठाकर स्वामीश्री की नगरयात्रा निकाली गई। हाथी पर योगीजी महाराज तथा निर्गुणदास स्वामी भी बिराजमान थे। ठाकुरजी की मूर्तियों को सुशोभित मोटरकार में रखा गया था। भगतजी ने वर्षों पूर्व सभी को आगाह किया था कि 'यह साधु (स्वामीश्री) तो हाथी की सवारी के लायक है।' आज उनके वचन सत्य सिद्ध हुए।

दूसरे दिन यज्ञ हुआ और जयन्ती के निमित्त भव्य सभा एकत्र हुई। देश-विदेश के अग्रणी हरिभक्तों ने प्रवचनों में स्वामीश्री के गुण गाए, और उनके धर्मकार्यों की प्रशस्ति की गई।

तुलाविधि के समय स्वामीश्री ने कह दिया कि साधु की सुवर्णतुला नहीं होनी चाहिए।

सभी ने मिलकर बार-बार प्रार्थना की परंतु स्वामीश्री अपने निर्णय में सुदृढ़ थे। अन्त में वे शक्कर से तुलाविधि करवाने के लिए राजी हुए। यही उनकी साधुता का परिचय था।

लाखों हरिभक्तों ने इस प्रसंग पर स्वामीश्री के प्रति अपनी गुरुभक्ति व्यक्त की। सत्संग के इतिहास में उनकी 85वीं जयन्ती का प्रसंग स्वर्णाक्षरों में दर्ज किया गया।

54. दुर्गपुर में भव्य मन्दिर का खातमुहूर्त

स्वामीश्री अब सारे काम बहुत ही जल्दी निपटाने लगे थे। भावनगर जिले के तीर्थस्थान गढ़डा में घेला नदी के तट पर विशाल टीले पर मन्दिर निर्माण का संकल्प स्वयं श्रीहरि ने किया था। उस भूमि पर दादाखाचर और जीवा खाचर दोनों का समान अधिकार था। दादाखाचर तो अपने हिस्से की भूमि श्रीहरि को समर्पित करने के लिए तैयार थे, लेकिन जीवा खाचर ने अपने हिस्से की भूमि नहीं दी। इसीलिए वह काम उस समय रुक गया था। परंतु श्रीजीमहाराज ने उसी दिन कहा था, 'भविष्य में इस टीले पर विशाल मन्दिर तैयार होगा, और मेरे प्रिय भक्त गुणातीतानंद स्वामी के साथ हमारी मूर्तियों की प्रतिष्ठा होगी।'

उपर्युक्त संकल्प को पूर्ण करने के लिए स्वामीश्री उस टीले की भूमि प्राप्त करने का प्रयास वर्षों से कर रहे थे। परंतु विरोधीलोग भी उतने ही सतर्क थे। उनकी पहुँच गहरी थी। इसके प्रतिरोध में उन्होंने भावनगर के महाराजा के पास ऐसा प्रस्ताव रखा था कि किसी भी हालत में टीले की एक इंच भर भूमि शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी को न दी जाए।

स्वामीश्री को जब यह खबर मिली, तो वे मुस्कुराकर कहने लगे कि 'यह तो स्वयं श्रीजीमहाराज का संकल्प था, अतः वे अपनी दिव्य शक्ति का उपयोग करके भी हमें भूमि दिलवाएँगे। आवश्यकता पड़ने पर पूरे देश में शासन का परिवर्तन होगा।'

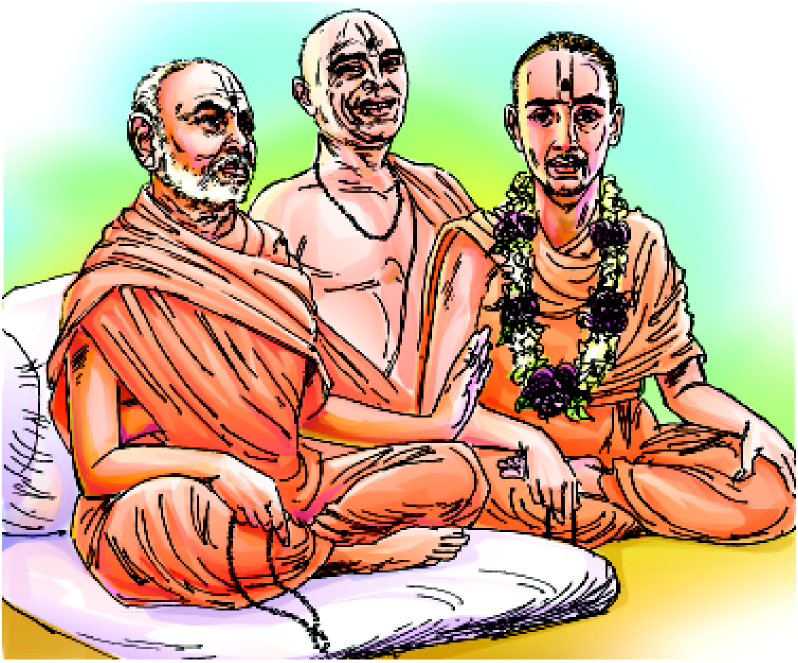
और ऐसा ही हुआ। भारत देश सन् 1947 में आजाद हुआ। छोटे-मोटे राज्य अखण्ड भारत में मिला दिए गए। भावनगर स्टेट भी उन्हीं राज्यों में से एक था। वहाँ पालिताणा तहसील के डिप्टी कलक्टर के पद पर स्वामीश्री के कृपापात्र भक्त गोविंदसिंह चूडासमा (आईसीएस) की नियुक्ति हुई। उनके सघन प्रयास के फलस्वरूप स्वामीश्री को गढ़डा की वह भूमि प्राप्त हो गई। असत्य पर सत्य की विजय का यह विलक्षण चमत्कार था।

सं. 2006 कार्तिक कृष्णा 11 हो मन्दिर का खातमुहूर्त हुआ। इस अवसर पर स्वामीश्री ने भावनगर के पूर्व महाराजा कृष्णकुमारसिंहजी, जो कि उस समय मद्रास के गवर्नर पद पर सेवारत थे, के करकमलों से संपन्न किया। उस अवसर पर स्वामीश्री ने अपने व्याख्यान में कहा था कि 'गढ़डा का यह मन्दिर भारत के समस्त मन्दिरों में श्रेष्ठ एवं सर्वोपरि होगा।'

घेला नदी के किनारे पर लाखों रुपये खर्चकर संगमरमर का मन्दिर बनाना आसान नहीं था। परंतु श्रीजीमहाराज का संकल्प-बल तथा उनकी शक्ति के सहारे वह महान कार्य केवल दो साल में संपन्न हो गया।

55. नारायणस्वरूपदासजी संस्था के प्रमुख

अब स्वामीश्री ने 'बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था' की व्यवस्था, सत्संग की सुरक्षा तथा उसके विकास का उत्तरदायित्व किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी को सौंपने का निश्चय किया। इस महान जिम्मेदारी को उठाने के लिए, उन्होंने केवल 28 वर्ष के युवा सन्त



नारायणस्वरूपदासजी में अपार क्षमता देखी।

इस युवा संत ने समय-समय पर स्वामीश्री के अनेक प्रकार से सेवा करके तथा त्याग, वैराग्य, भक्ति और धर्म आदि सद्‌गुणों से उनको प्रसन्न किया था। साधुता व्यवहारकुशलता, शास्त्रों का अभ्यास, मधुर वाणी तथा लोगों के हृदय जीतने की कला आदि अनेक विशेषताएँ, उनके विलक्षण व्यक्तित्व को विभूषित कर रही थीं। वे इसी कारण सर्वप्रिय बन गए थे। स्वामीश्री ने उनको अहमदाबाद बुलाया और सत्संग समुदाय के आगे अपना प्रस्ताव रख दिया। सभी के हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगीं।

अहमदाबाद में शाहपुर स्थित आमलीवाले मुहल्ले के छोटे से मन्दिर में प्रमुखपद की वरणी का कार्यक्रम आयोजित किया। 21 जुलाई, सन् 1950 का वह शुभ दिन था। स्वामीश्री ने उस दिन अपने और योगीजी महाराज के बीच स्वामी नारायणस्वरूपदासजी को बैठाया और उपस्थित हरिभक्तों को सम्बोधित करते हुए कहा,

'सद्‌गुरु रामानन्द स्वामी ने जिस तरह श्रीजीमहाराज को छोटी उम्र में ही

धर्मधुरा सौंपी थी, वैसे ही आज मैं अपने प्रमुखपद की धुरा, इस युवा संत सद्गुरु शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी को सौंपकर, इन्हें अपने स्थान पर नियुक्त करता हूँ। यद्यपि उम्र में ये छोटे अवश्य हैं, परन्तु गुणों में वे बहुत महान हैं। आप सभी संत और हरिभक्त, इन्हें अपना उत्तरदायित्व संभालने में सहयोग दीजिएगा। उनको सौंपे गए प्रमुखपद की शोभा बढ़ाने में आप लोग सहायक बनिएगा। आज तक आप लोग जिस प्रकार मेरी आज्ञा मानते रहे, वैसे ही अबसे सद्गुरु नारायणस्वरूपदासजी की आज्ञा का पालन करते रहिएगा।'

इतना निर्देश देने के बाद उन्होंने, शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी से कहा, 'आपके साथ बिराजमान योगी महाराज वचनसिद्ध और प्रतापी संत हैं, उनकी छत्र-छाया में रहकर आपको सत्संग की शोभा बढ़ानी है।'

फिर उन्होंने, योगीजी महाराज से कहा, 'योगी! इस नारायण स्वामी को संभालना और आप इन्हें आशीर्वाद दें कि उनके हृदय में आपके समान गुणों का उदय हो।'

योगीजी महाराज ने प्रसन्न होकर उनको आशीर्वाद दिए।

स्वामीश्री ने नए अध्यक्ष के भाल पर तिलक लगाया और आशीर्वाद देकर, अपनी चद्दर नारायणस्वरूपदासजी को ओढ़ा दी। उस दिन से वे सत्संग में 'प्रमुखस्वामी' के प्रिय नाम से प्रसिद्ध होने लगे।

उन्होंने उठकर स्वामीश्री के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। उपस्थित सभी को वन्दन करके उन्होंने कहा, 'मुझ में शक्ति, कला, विद्या, ज्ञान, कुशलता आदि जो कुछ भी हैं, वह आप ही का दिया हुआ है। आपने मुझ पर धर्मसेवा का जो उत्तरदायित्व सौंपा है, उसे मैं पूरा न्याय दे सकूँ, इसके लिए मुझे आवश्यक शक्ति देना। इसी आशा के साथ मैं गुरु तथा इष्ट की प्रसन्नता प्राप्त कर सकुँ, ऐसी उनके चरणों में प्रार्थना।'

56. निर्गुणदास स्वामी का अक्षरवास

संप्रदाय के महान संत सद्गुरु स्वामी निर्गुणदासजी का स्वास्थ्य बिल्कुल ही गिर गया था। निदान और चिकित्सा के लिए उन्हें मुंबई ले जाया गया। स्वामीश्री भी उन दिनों बीमार थे। ऐसी स्थिति में भी वे मुंबई पधारे तथा निर्गुण स्वामी एवं हरिभक्त समुदाय को ब्रह्मज्ञान, सत्संग का

इतिहास एवं अन्य स्मरणयोग्य बातें करके अपार आनंद दे रहे थे। मुंबई के हरिभक्तों ने तन, मन, धन से अपूर्व सेवा करके स्वामीश्री को प्रसन्न किया।

निर्गुणदास स्वामी की बीमारी अनेक विशेषज्ञ वैद्य-डोक्टरों के उपचार के बावजूद बढ़ती ही गई थी। अक्षरपुरुषोत्तम महिमा के अनन्य प्रचारक एवं शूरवीर प्रकृति के इस सन्त को न तो मान-प्रतिष्ठा का मोह था, न ही किसी हरिभक्तों के पास एक साधारण से पदार्थ की भी अपेक्षा थी। हमेशा हरिभक्तों का पक्ष लेनेवाले, उनके सुख-दुःख को अपना समझकर उनके दुःख-दर्द दूर करनेवाले तथा अफ्रीका में रहनेवाले हरिभक्तों को पुस्तक आकार के पत्रों से पुष्टि देनेवाले इस महारथी संत के सुस्वास्थ्य के लिए पूरा सत्संग श्रीहरि के चरणों में प्रार्थना कर रहा था।

परंतु सं. 2006 ज्येष्ठ शुक्ला 14 को उन्होंने आणंद में 'स्वामिनारायण' का जाप जपते हुए अपना जीवन कार्य समाप्त किया।

स्वामीश्री के दाहिने हाथ के समान इस शूरवीर सन्त के अक्षरवास से सारा सत्संग स्तब्ध हो गया। सभी को सांत्वन देकर स्वामीश्री ने उनके समान सदगुणों को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी।

57. 'मैं ही योगी और योगी ही मैं'

स्वामीश्री का स्वास्थ्य भी अब गिर रहा था। पैरों के जोड़ों में वातरोग के कारण अत्यंत कष्ट हो रहा था। अन्य बीमारी भी ग्रहण करके वे अनेक लीला करके विभिन्न आश्चर्यों से हरिभक्तों को सेवा का लाभ दे रहे थे।

उन दिनों योगीजी महाराज अहमदाबाद से गोंडल जाते हुए सारंगपुर पधारे। जब वे स्वामीश्री से मिले, तो वे योगीराज से कहने लगे, 'अब तो महाराज मुझे ले जाएँगे, मैं आपको इस नारायणदास स्वामी (प्रमुखस्वामी) को सौंपता हूँ, तथा सारे मन्दिर भी तुम्हें सौंप रहा हूँ, उन्हें सम्हालना।'

दूसरे दिन योगीजी महाराज का स्मरण करके स्वामीश्री ने कहा, 'अहो, जोगी तो बस जोगी ही है, साक्षात् गुणातीत मूर्ति! जोगी जैसा साधु अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में भी मिलना मुश्किल है। हमारी अनुवृत्ति (मर्ज़ी) का 40 वर्ष से पालन करते आए हैं, ऐसे ये हमारी मर्ज़ी और ईश्वर की इच्छा के जानकार हैं।'



नादुरस्त स्वास्थ्य होने पर भी स्वामीश्री जन्माष्टमी के उत्सव पर अटलादरा पहुँचे। यहाँ हज़ारों हरिभक्तों को अन्तिम दर्शन देने की उनकी इच्छा थी। अब वे अपनी लीला को समेटना चाहते थे। वे मोटर मार्ग से अटलादरा पधारे थे। सभी स्वामीश्री को स्वस्थ देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

एक दिन एक साधु ने स्वामीश्री से कहा, 'स्वामीजी! मैं तो प्रतिदिन आपकी ही माला फेरता था, मेरे मन से तो आप ही भगवान हैं।'

यह सुनकर स्वामीश्री ने कुछ कठोर होकर कहा, 'ऐसा नहीं बोलना चाहिए। सभी को स्वामिनारायण भगवान की ही माला फेरनी चाहिए। उन्हीं का भजन तथा उन्हीं का पूजन करना चाहिए। मैं भी ऐसा ही करता हूँ, अत: आप लोग भी ऐसा ही करें, ऐसी मेरी आज्ञा है।'

58. अन्तिम लीला

अब स्वामीश्री की एक ही रटना थी कि मुझे सारंगपुर जाना है। परंतु उनकी बीमारी इतनी बढ़ चुकी थी कि ऐसी स्थिति में स्वामीश्री को सारंगपुर पहुँचाना वास्तव में कठिन था।

उन दिनों योगीजी महाराज मुंबई से अटलादरा पधारे। स्वामीश्री की तीव्र इच्छा जानकर उन्होंने स्वामीश्री को सारंगपुर पहुँचाने का बीड़ा उठा लिया।

वड़ोदरा से ट्रेन द्वारा सौराष्ट्र की ओर जाने का निर्णय हुआ था। अहमदाबाद के रेलवे स्टेशन पर स्वामीश्री के दर्शन के लिए एकत्र हुए हरिभक्तों को सम्बोधित करके स्वामीश्री कहने लगे, 'मुझ में और योगी में तनिक भी अन्तर नहीं है, तुम लोग अब उनकी आज्ञा का पालन करना।'

वे सारंगपुर पहुँचे, वहाँ अपना स्वास्थ्य अच्छा बताते थे तथा गढ़डा में होनेवाले मूर्तिप्रतिष्ठा उत्सव के लिए मार्गदर्शन दिया करते थे। एक दिन स्वामीश्री अचानक मोटरकार द्वारा गढ़पुर पधारे। उन्होंने कार में बैठते ही भक्तराज हकाभाई से कहा था, 'चलिए, गढ़डा जाकर मूर्तिप्रतिष्ठा कर आएँ।' स्वामीश्री के इन शब्दों का रहस्य किसी की समझ में नहीं आया।

गढ़डा में दूसरे ही दिन स्वामीश्री ने घेला नदी के पवित्र जल से मूर्तियों को स्नान करवाया, यज्ञोपवीत अर्पण किया, कुमकुम का तिलककर पुष्पमालाएँ पहनाईं, भावविभोर होकर मूर्तियों का दर्शन करते हुए आरती उतारी और बोले : 'अब मेरा काम पूरा हो गया, मूर्तियों की प्रतिष्ठा हो गई, अब मुझे यहाँ नहीं आना है, योगीजी महाराज आएँगे और आरती उतारेंगे।'

स्वामीश्री के इन शब्दों का रहस्य भी कोई समझ नहीं पाया। दस बजे स्वामीश्री सारंगपुर के लिए रवाना हुए और कहा, 'अब तो सारंगपुर में ही अखण्ड निवास करना है।'

सारंगपुर में अफ्रीका से पधारे हुए हरिभक्तों को दर्शन-सत्संग का अपार सुख देकर स्वामीश्री एकबार कहने लगे,

'किसी को भी महाराज और स्वामी के समान कहना, तो उनका द्रोह है। उनके स्वरूपों का अपमान है। हम श्रीजीमहाराज के वचन अनुसार स्पष्टरूप से मानते हैं कि सन्त में महाराज समाए हुए हैं, इस रहस्य को यदि बराबर समझ लिया जाए तो सन्त और महाराज में कोई अन्तर नहीं दिखाई देगा। महाराज और सन्त के बीच अभेद भावना है, इसीलिए तो सन्त को भगवान का स्वरूप समझा जाता है। यह ज्ञान शास्त्रोक्त है। उसमें महाराज का अनादि (व्यतिरेक) और अलग स्वरूप भी सुरक्षित रहता है।

महाराज के सम्बन्ध के बिना ही यदि एक के बाद एक गुरु को भगवान मानना शुरू कर देंगे, तो भगवान का अनादित्व ही नहीं रहेगा और शुष्क वेदान्त जैसी गलत समझ सत्संग में फैल जाएगी। इसीलिए वचनामृत

ग. प्र. 27 में सन्त के जो लक्षण बतलाए हैं, उन लक्षणों से युक्त सन्त में महाराज सभी प्रकार से निवास करते हैं, ऐसे सन्त भगवत्स्वरूप हैं, भगवान के तुल्य ही हैं। अत: सबको चाहिए कि वे श्रीहरि द्वारा दी गई मर्यादा में रहें और उनकी आज्ञा के अनुसार व्यवहार करें। सर्वोपरि भगवान सहजानन्द स्वामी और अनादि अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के स्वरूपों को समझकर, अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना को विशुद्ध उपासना समझना और एकान्तिक सन्त को मोक्ष का द्वार मानना।'

अब तो स्वामीश्री बार-बार गहरे चिंतन में उतर जाते थे। बार-बार उनके मुँह से निकल जाता था कि 'गढ़पुर की आरती अब योगीजी महाराज उतारेंगे' परंतु वे तो स्वामीश्री की आज्ञा से मुंबई पधारे थे।

59. ऐसे शास्त्रीजी महाराज को हमारे लाखों वन्दन हों

सं. 2007 वैशाख शुक्ला चतुर्थी को स्वामीश्री की बीमारी ने गंभीर स्वरूप धारण कर लिया। सभी चिंतित थे।

सुबह 9 बजे उन्होंने कहा, 'मुझे यहाँ से मंदिर के नीचे रंगमण्डप में ले चलो।'

सेवक उनको वहाँ ले गए। उपस्थित सभी हरिभक्त एवं संत लगातार उनके दर्शन करते हुए 'स्वामिनारायण' मन्त्र का जाप कर रहे थे।

ठीक 10 बजकर 50 मिनट पर सारा रंगमण्डप अलौकिक तेज से भर गया; चारों ओर दिव्य प्रकाश फैल गया। 'स्वामी! महाराज!' पुकारते हुए स्वामीश्री स्वतंत्ररूप से अपनी जीवनलीला समाप्त करके अक्षरधाम में बिराजमान हो गए।

इस आघातजनक समाचार से सारे सत्संग में गहरा विषाद छा गया।

योगीजी महाराज मुंबई से भावनगर होकर सारंगपुर पधारे। प्रमुखस्वामी गढ़पुर मंदिर की प्रतिष्ठा की पूर्व तैयारी को स्थगित करके सारंगपुर आ पहुँचे। उनकी स्थिति आघात के कारण अत्यंत गंभीर थी। श्रीहरि की प्रासादिक भूमि पर स्वामीश्री की देह का चन्दनकाष्ठ की चिता में अग्नि संस्कार किया गया।

शोकग्रस्त सत्संग समाज को अब केवल योगीजी महाराज का ही

सहारा था। वे सभी का मार्गदर्शन करते थे और धीरज बँधाते थे। केवल छः दिनों के बाद ही गढ़डा में मूर्तिप्रतिष्ठा करने का मुहूर्त था। लोग दुविधा में थे कि ऐसी स्थिति में प्रतिष्ठा उत्सव करना चाहिए या नहीं? परंतु योगीजी महाराज ने स्पष्टरूप से कहा, 'स्वामीश्री कहाँ गए हैं? वे तो हमारे बीच प्रकट ही हैं, स्वामीश्री स्वयं इस दशमी को प्रतिष्ठा करना चाहते थे, अतः इसी दिन प्रतिष्ठा की जाएगी।'

अब सभी को स्वामीश्री के उन वचनों का स्मरण होने लगा कि 'योगी आरती उतारेंगे।' सभी योगीजी महाराज के स्वरूप में स्वामीश्री को देखकर मूर्तिप्रतिष्ठा की सेवा में जुड़ गए।

इस प्रकार उपासना प्रवर्तन का भगीरथ कार्य करके, भगवान स्वामिनारायण के अखंड धारक और सत्संग के सूत्रधार स्वामीश्री ने इस पृथ्वी पर आकर संप्रदाय को नवजीवन प्रदान किया, एक नए इतिहास का सृजन किया, साधुता के आदर्श को जीवन्त बनाया तथा योगीजी महाराज एवं प्रमुखस्वामी जैसे महान संतों की भेंट दी।

ऐसे महापुरुष के चरणारविंदों में कोटि कोटि वंदना...।